न्दामामा
माँ-बच्चों का मासिक पत्र

Chandamama, Oct. '60 Photo by Anant Desai

पुरस्कृत परिचयोक्ति | "दे दीदी, खाने को दे!" प्रेषक : अनिरुद्ध श्रीवास्तव - नेतरहाट

अपना

साठे मिल्क चाकलेट एकदम बारीक
टुकड़ों में पिसे हुए
बेहतरीन कोकोबीन गन्ने
के शक्कर व भरपूर
दूध के ढेले से बने हैं,
ताकि मुंह में रखते ही घुल जाएं।
लाल व सुनहले लेबुल में सुलभ है।

मनपसंद की

SATHE'S
Chocowafer

वजन में एकदम ही हल्के
क्रीम वैफर्स जिनपर
भरपूर दूध चाकलेट
का मुलम्मा चढ़ा है।
और हर आदमी की
मनपसंद की चीज है।
लाल व सफेद लेबुल में सुलभ
चाकोवेफर का नाम याद रखें।

चुन लीजिए

चाकलेट के असली स्वाद के लिए
सुपरब्लेंड एक आदर्श चाकलेट है जैसा
कि इसके नाम से ही जाहिर है।
अन्तर्राष्ट्रीय छाप कोकोबीन्स
व गन्ने के शक्कर से निर्मित
सुपरब्लेंड प्लेन चाकलेट में
अद्वितीय स्वाद है जो बहुत ही सुमधुर
है। नीले व चांदी लेबुल में सुलभ है।

SATHE'S
Superblend
PLAIN
CHOCOLATE

ये आपके लिए बने हैं!

चन्दामामा

अक्तूबर १९६०

Waterbury's
VITAMIN
Compound

नं.११
दीपावली शुभचिंतन
BINACA

बिनाका
'रंग भरो' प्रतियोगिता

बच्चो! हर महीने हम तुम्हारे लिये एक नई तस्वीर पेश करेंगे जिस में तुम्हें रंग भरना होगा।

इस प्रतियोगिता को अधिक दिलचस्प बनाने के लिये, सबसे अच्छा रंग भरनेवाले को हम हर महीने इनाम भी देंगे—५० रुपया नक़द!

तो इस तस्वीर में रंग भरकर इस पते पर भेज दो: "बिनाका, पोस्ट बॉक्स: ४२९, बम्बई।"

इस प्रतियोगिता में सिर्फ़ १५ साल की उम्र तक के भारत में रहनेवाले बच्चे ही भाग ले सकते हैं। हमारे जजों का फ़ैसला आख़री होगा और जीतनेवाले को ख़त के ज़रिये ख़बर कर दी जायेगी। याद रहे प्रतियोगिता की आख़री तारीख १५ अक्टुबर है।

इनाम जीतनेवाले बच्चे का नाम रेडियो सीलोन पर "बिनाका गीतमाला" के हर कार्यक्रम में सुनाया जायगा। ज़रूर सुनिये —हर बुधवार की शाम के ८ बजे, २५ और ४१ मीटर्ज़ पर।

सीबा का लाजवाब टूथपेस्ट

परियों की राजकुमारी

मिन्नी को जब मैं ने नया फ्रॉक पहनाया तो वह तालियां बजा कर नाचने लगी।

बड़े प्यार से मैं ने यह फ्रॉक तैयार किया था—दूधिया सफेद फ्रॉक जिस के बार्डर पर नीले रंग के नन्हें नन्हें फूल...

मिन्नी उछलती कूदती शीशे के सामने गई। वहां उस ने घूम कर चारों ओर से फ्रॉक को देखा और फिर दूसरे क्षण अपनी सहेलियों को फ्रॉक दिखाने घर से बाहर निकल गई।

मैं ने पुकारा, "मिन्नी, मिन्नी! फ्रॉक उतार दे, मैला हो जायेगा। शाम को शादी पर जाते समय पहनना..."

पर मिन्नी वह गई, वह गई।

मैं ने उसे देखा तो लगा जैसे वह परियों की राजकुमारी हो। बड़ी ही प्यारी लगी वह उस फ्रॉक में।

दिल में तो आया कि मिन्नी को वापस ले आऊँ। फ्रॉक तो मैं ने नाप देखने के लिए ही पहनाया था। लेकिन तभी रसोई में जो भाजी के जलने की महक आई तो उधर दौड़ी और फिर वहां काम में ऐसी फँसी कि होश ही भूल गई।

होश तब आई जब दर्वाजे में अपनी सहेली राधा की आवाज सुनी। इतने अर्से के बाद उसे देख कर चाव चढ़ गया। और अभी हम जा कर ड्राईंगरूम में बैठी ही थी कि सामने क्या देखती हूँ—दर्वाजे में मिन्नी खड़ी है।

देखते ही मेरे तो होश उड़ गये। सारा फ्रॉक गंदा किया हुआ था। अब शाम को शादी पर क्या पहनेगी।

मैं मिन्नी की ओर बढ़ी "सत्यानाश कर दिया है फ्रॉक का। शाम को अब अपना सिर पहनेगी?" और मैं उसे मारने को ही थी कि राधा ने छुड़ाते हुये कहा, "पागल

S/P.JA-50 HI

हो गई है क्या? बच्ची पर हाथ उठाती है।"
मिन्नी को छुटकारा मिला। उस ने फ्रॉक उतार दिया। फिर मैं फ्रॉक धोने गुसलखाने में गई। फ्रॉक को डंडे से कूट पीट रही थी कि राधा वहां आई, "तो क्या अब मिन्नी की बजाये फ्रॉक को पीट कर अपना गुस्सा ठंडा करेगी?"

"इसे धोऊं न तो शाम को यह पहनेगी क्या? दूसरे फ्रॉक तो इतने अच्छे नहीं हैं।"

"पर पीटती क्यों हो? वह फट जायेगा।"

"तो पीटे बिना साफ कैसे होगा?"

"साफ कैसे होगा? सही किस्म के साबुन से। अब जैसे मैं सनलाइट बरतती हूं..."

"सनलाइट क्या ऐसा बढ़िया साबुन है?"

"हां, सनलाइट से कपड़े बहुत उजले धुलते हैं। यह बिल्कुल शुद्ध होता है। इस लिये इससे कपड़ों को कोई नुकसान नहीं पहुंचता।"

"पर है तो महंगा न?"

"अजीब बात करती हो," राधा हंसी, "जरा इस के फायदे तो देखो। इसे जरा सा कपड़ों पर मलो तो इतना झाग देता है कि ढेरों कपड़े देखते देखते सफेद और उजले धुल आते हैं। कूटने पीटने से एक तो अपनी जान बचती है, दूसरी कपड़ों की। और इस लिये कपड़े पहले से कहीं ज्यादा देर तक टिकते हैं। इस तरह साबुन बचा, मेहनत बची, कपड़े भी बचे। अगर इतनी बचत हुई तो यह महंगा कैसे हुआ?"

उसी समय मैं ने सनलाइट की टिकिया मंगवाई और उस से फ्रॉक धोने लगी। साबुन फ्रॉक से जरा सा छुआ था कि झाग ही झाग हो गया। मिनिटों में फ्रॉक धुल कर चमकने लगा। शाम को मिन्नी ने वही फ्रॉक पहना, तो सच कहती हूं, वह बहुत ही प्यारी लगी—परियों की राजकुमारी जैसी। मैंने अंगुली को काजल लगा कर उस के माथे पर छोटा सा निशान लगा दिया कि कहीं नजर न लग जाये।

S/P. 38-30 HI

हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड ने बनाया

एनर्जी फूड
बिस्कुटों

जे. बी. मंघारामके

एनर्जी
फूड
बिस्कुटों

देश की भावी पीढी को स्वस्थ रखती है

जे. बी. मंघाराम अॅण्ड कं.
ग्वालियर

चन्दामामा का नवम्बर अंक

इस वर्ष भी दीपावली अंक होगा . . .

. . . . अत्यन्त रोचक व आकर्षक

★ इसमें हमेशा से अधिक पृष्ट होंगे। कितनी ही नई मनोरंजक कहानियाँ होंगी। रंगबिरंगे चित्र, व्यंग्य चित्र और अनेक सुपाठ्य स्तम्भ, सुशोभित रूप में इस अंक में दिये जा रहे हैं।

★ यह अंक हिन्दी, तुलुगु, तमिल, कन्नड, मराठी, गुजराती—६ भाषाओं में प्रकाशित होगा।

★ हर किसी अंक का दाम 75 N. P. (१२ आने) होगा।

(पाठक अपनी प्रति के बारे में पहिले ही एजन्ट को कृपया सूचना दें)

★

जानकारि के लिए:

चन्दामामा पब्लिकेशन्स,

वडपलनी :: मद्रास-२६
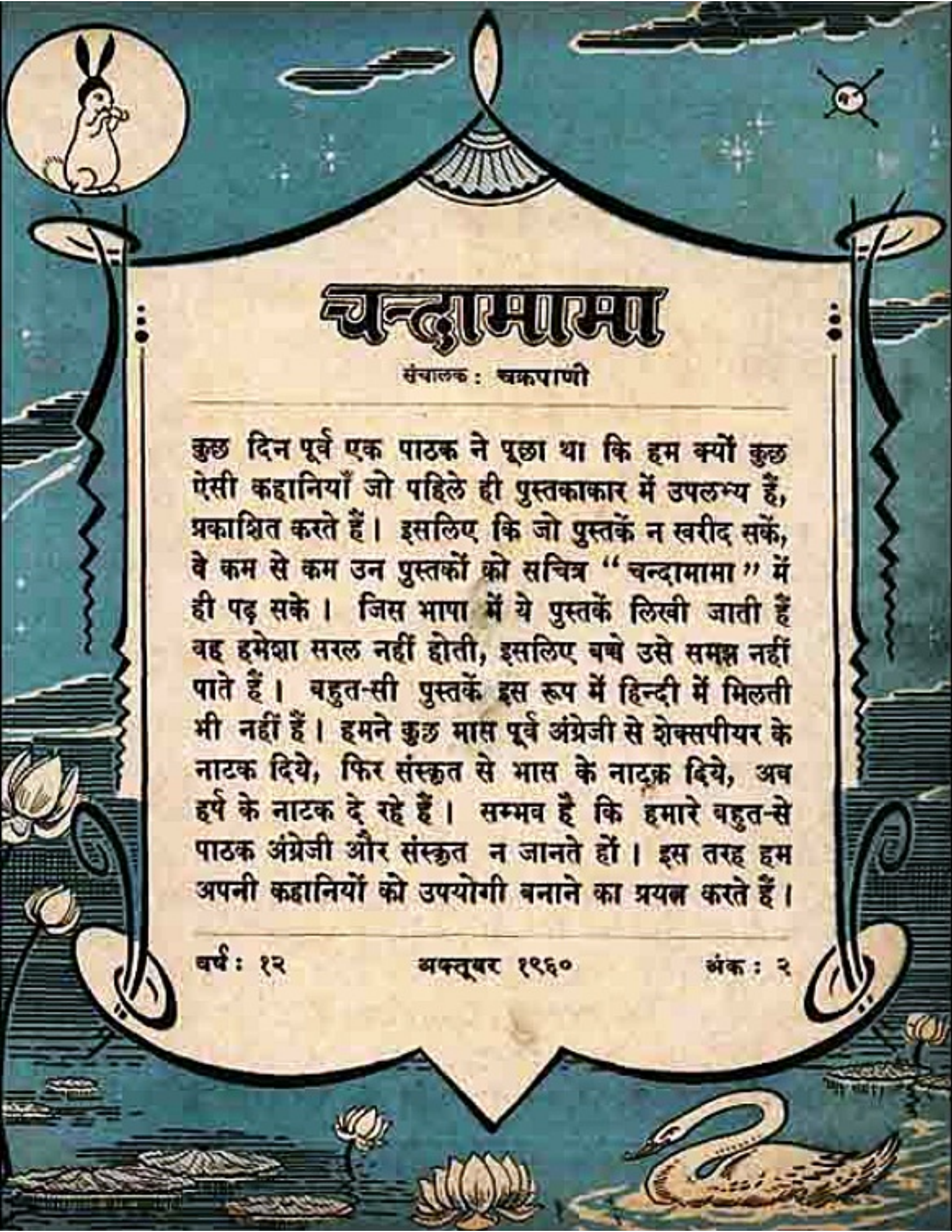
चन्दामामा

संचालक : चक्रपाणी

कुछ दिन पूर्व एक पाठक ने पूछा था कि हम क्यों कुछ ऐसी कहानियाँ जो पहिले ही पुस्तकाकार में उपलभ्य हैं, प्रकाशित करते हैं। इसलिए कि जो पुस्तकें न खरीद सकें, वे कम से कम उन पुस्तकों को सचित्र "चन्दामामा" में ही पढ़ सकें। जिस भाषा में ये पुस्तकें लिखी जाती हैं वह हमेशा सरल नहीं होती, इसलिए बच्चे उसे समझ नहीं पाते हैं। बहुत-सी पुस्तकें इस रूप में हिन्दी में मिलती भी नहीं हैं। हमने कुछ मास पूर्व अंग्रेजी से शेक्सपीयर के नाटक दिये, फिर संस्कृत से भास के नाटक दिये, अब हर्ष के नाटक दे रहे हैं। सम्भव है कि हमारे बहुत-से पाठक अंग्रेजी और संस्कृत न जानते हों। इस तरह हम अपनी कहानियों को उपयोगी बनाने का प्रयत्न करते हैं।

वर्ष : १२   अक्तूबर १९६०   अंक : २

अर्जुन को यों संहार करता दुर्योधन न देख सका। उसने अपने सेनापति द्रोण के पास जाकर कहा—"आचार्य! अर्जुन हमारी सेना का संहार करता उस दिशा की ओर जा रहा है, जहाँ सैन्धव है। क्या आपने देखा?"

"व्यूह में थोड़ा-सा छेद देख कृष्ण, अर्जुन का रथ लेकर आया, मेरे पास से मुड़कर आगे चला गया, अर्जुन का मैं पीछा नहीं कर सकता। यही नहीं पाण्डव योद्धा व्यूह के मुँह पर जमा हो गये थे। मुझे उनसे व्यूह की रक्षा करनी थी। मैं ऐसा काम करूँगा कि तुम बिना खतरे के अर्जुन का मुकाबला कर सकोगे। मैं तुम्हें सोने का एक कवच पहिनाऊँगा। जब तक वह तुम्हारे शरीर पर है, अर्जुन तो क्या, इन्द्र भी तुम्हारा कुछ नहीं कर सकता।" कहते हुए द्रोण ने मन्त्रोच्चारण करते हुए एक दिव्य कवच दुर्योधन को पहिनाया। और उसको आशीर्वाद दिया।

दुर्योधन उस कवच को धारण करके बहुत-सी सेना लेकर अर्जुन के पास गया।

सायंकाल होनेवाला था। अभी तक अर्जुन सैन्धव के पास नहीं पहुँच पाया था। एक ओर अर्जुन शत्रुसेना का सर्वनाश कर रहा था और दूसरी ओर कृष्ण रथ को वायु वेग से आगे ले जा रहा था और घोड़ों की भी दयनीय हालत थी। उन पर बाण बरस रहे थे। इधर उधर घूम-घामकर लाशों को कुचलते वे आगे बढ़ रहे थे। भूख से उनकी बुरी हालत हो रही थी। वे ऐसी स्थिति में भी न थे कि हिलडुल सकें।

यह मौका देख कौरव सैनिकों ने अर्जुन को चारों ओर से घेर लिया।

अर्जुन इस तरह बाण छोड़ता गया कि वे समीप न आयें। फिर उसने एक अस्त्र भूमि में छेदकर एक सरोवर-सा बना लिया। बाणों से उसने एक घर-सा भी तैयार कर दिया। शत्रुसेना यह आश्चर्य देख रही थी कि कृष्ण ने घोड़ों को खोला। उनके शरीर में घुसे हुए बाण निकाले। घोड़ों को पानी में धोया। उन्हें पानी पिलाया, दाना दिया। फिर उन्हें रथ में जोत दिया। अर्जुन, जो अब तक चारों ओर शत्रुसेना से युद्ध कर रहा था, रथ पर सवार होकर चल दिया।

अब अर्जुन का रथ बाण की तरह निकला और जल्दी ही उस जगह पहुँचा, जहाँ सैन्धव था। अर्जुन का सैन्धव को देखना था कि दुर्योधन के भाई हाहाकार करने लगे।

इसी समय दुर्योधन कवच धारण करके अकेला अर्जुन के सामने आया, दोनों में युद्ध हुआ। दुर्योधन के बाण तो अर्जुन पर लगे, उसे घायल भी कर सके पर अर्जुन के बाण, दुर्योधन के कवच को न बेध सके। यह देख, अर्जुन ने दुर्योधन के बाण काटे। उसके घोड़े और सारथी को ध्वंस कर दिया। उसके हाथों पर भी चोट मारी।

इधर जहाँ द्रोण था, वहाँ भी दोनों पक्षों में भयंकर युद्ध होने लगा था। भीम और अलम्बस नामक राक्षस का घोर युद्ध हुआ। पहिले तो भीम मूर्छित हो गया, फिर जब उसने उसको जीता, तो वह भाग गया। फिर घटोत्कच और उसका युद्ध हुआ। दोनों राक्षस थे। इस युद्ध में जब अलम्बस की मृत्यु हो गई तो पाण्डव योद्धाओं के आनन्द की सीमा न रही।

इस बीच युधिष्ठिर अर्जुन के बारे में घबराने लगा। उसने सात्यकी से कहा—"अर्जुन ने प्रातःकाल शत्रु सेना में प्रवेश किया था, अब सायंकाल होने जा रहा है। कौरवों का सिंहनाद सुनाई पड़ रहा है। तुम ज़रा अर्जुन की ओर तो चलो।"

सात्यकी युधिष्ठिर की रक्षा का भार भीम पर छोड़कर, रथ पर उस स्थान पर गया, जहाँ अर्जुन युद्ध कर रहा था।

सात्यकी आन्धी की तरह शत्रु सेना को चीरता आगे बढ़ रहा था कि द्रोण ने रोककर कहा—"अरे, तुम्हारा गुरु अर्जुन नीच की तरह मुझसे युद्ध किये बिना मेरी प्रदक्षिणा करके आगे बढ़ गया। तुम भी वही करो। नहीं तो तुम जीवित नहीं बचोगे।"

"ब्राह्मणोत्तम! शिष्य का तो यही कर्तव्य है कि गुरु के दिखाये मार्ग पर चले। मुझे जाने दीजिये।" कहता सात्यकी उससे बचता आगे निकल गया, द्रोण अपनी सेना कृतवर्मा को सौंपकर उसका पीछा करने लगा।

इससे पहिले कि द्रोण उसके पास पहुँच सका—सात्यकी ने एक गज सेना का मुकाबला करके उसको नाश कर दिया। मगध देश के जलसन्धु का सामना करके उसको मार दिया। इतने में द्रोण, दुस्सह, विकर्ण, चित्रसेन, दुर्मर्ष, सत्यव्रत आदि कौरव वीरों ने सात्यकी को चारों ओर से घेर लिया और उससे युद्ध किया। सात्यकी ने सबका सामना किया। सब पर उसने प्रहार किया। फिर दुर्योधन लड़ने आया। सात्यकी ने उसको भी भगा दिया। फिर कृतवर्मा आया। दोनों में कुछ देर तक युद्ध हुआ। कृतवर्मा का शरीर खून से लथपथ हो गया और वह रथ से नीचे गिर गया।

अमृत मंथन

दैत्य देवता मिलकर सारे
चले जिधर था क्षीरसमुद्र,
चलते रहे कई दिनों तक
किंतु न आया क्षीरसमुद्र।

चलते चलते किया उन्होंने
सात महाद्वीपों को पार,
मिला एक तब पर्वत उनको
जिसका था उन्नत आकार।

वह सुमेरु पर्वत था ऊँचा
उसका था अति भव्य शिखर,
देखी सबने उसी शिखर से
क्षीरोदधि की लोल लहर।

क्षीरोदधि था श्वेत मनोरम
शीतल सुषमा का आगार,
लगता था ज्यों उजले उजले
मेघों का हो पारावार।

दृष्टि जहाँ तक भी जाती थी
नहीं किनारा दिखता था,
था अनन्त विस्तार उदधि का
हृदय सभी का डरता था।

कहा दैत्य ने—"इन्द्र, कहो अब
कैसे हम यह सिन्धु मथेंगे?
बड़े बड़े पर्वत भी इसमें
डूबे बिना नहीं रहेंगे।

मथनी लायें बड़ी कहाँ से
रस्सी लम्बी कहाँ मिलेगी?
इस अथाह सागर के मंथन
बिना न हमको शांति मिलेगी।

बहुत बड़ा मंथर पर्वत है
हिमगिरि से भी कहीं महान,
उठा उसे ही लाते हैं हम
अभी एक तृण के समान।"

महेशनारायण सिंह

फिर तो आये वहाँ देव भी
सबने मिलकर जोर लगाया,
हिला न लेकिन मंदर तिल भी
थकी शीघ्र ही सबकी काया।

निरुत्साह के कारण सारे
देव मौन हो बैठ गये,
औ' लज्जा से दैत्यों ने भी
अपने मस्तक झुका लिये।

सहसा एक वहाँ पर आया
महानाग भारी बलवान,
जिसे देखकर दैत्यों के औ'
देवों के भी सूखे प्राण।

सहस्र फण थे डोल रहे औ'
आँखों में था तीव्र प्रकाश,
उसको लखकर लगता था ज्यों
हो चलता-फिरता कैलास।

भीत देवता और दैत्य सब
गये निकट औ' किया प्रणाम,
फिर बोला यह इन्द्र—"महात्मन!
कहाँ आपका सुन्दर धाम?

भेजा है क्या महाविष्णु ने
यहाँ आपको सचमुच आज?
या खुद ही हो सदय आप हैं
यहाँ पधारे इस क्षण आज?

इतना कहकर दैत्य वहाँ से
चले शक्ति के मद में चूर,
खड़े देव सब रहे वहाँ पर
मर्माहत होकर भरपूर।

मंदर पर्वत खड़ा अचल था
आसमान के छूता छोर,
मूँछों पर दे ताव दैत्य सब
बढ़े बहुत ही करते शोर।

जोर लगाया बहुत उन्होंने
लेकिन हिला न तिल भी मंदर,
जोश हुआ सब उनका ठंडा
मुरझाया उन सबका अंतर।

शक्ति आपकी ऐसी जिसकी
कभी न तुलना हो सकती है,
इस मंदर पर्वत की हस्ती
भी इसको छोटी लगती है।

क्षण में आप उठा सकते हैं
चूर चूर भी कर सकते हैं,
आप समर्थ हैं, आप असंभव
को भी संभव कर सकते हैं।"

सुनकर बातें देवराज की
महानाग वह हँसा तुरन्त,
बोला—"मैं ही आदिशेष वह
जिसकी कहते शक्ति अनन्त।

पृथ्वी को मैं गेंद समझता
इस मंदरगिरि की क्या बात,
धूल बने यह क्षण में ही यदि
करूँ अभी हलका आघात।

चाह रहे मंदर पर्वत को
मथनी तुम तो अभी बनाना,
उसे सिंधु में रख दूँगा मैं
काम न मेरा देर लगाना।"

आदिशेष की बातें सुनकर
दैत्य देवता हुए प्रसन्न,
स्तुति करने लगे देवता
और नाचने दैत्य प्रसन्न।

आदिशेष को देख सामने
मंदर ने निज शीश झुकाया,
धूल फूल की तरह शेष ने
उसे हाथ पर शीघ्र उठाया।

फिर बोले वह—"इन्द्र, कहो अब
तुम्हें और क्या क्या करना है?
समय अधिक है पास न मेरे
शीघ्र मुझे अब चलना है।"

कहा इन्द्र ने—"मंदरगिरि की
मथनी से हम सिंधु मथेंगे,
अमृत जो निकलेगा उसको
पीकर हम सब अमर बनेंगे।"

आदिशेष ने पूछा झट यह—
"मथनी तो मिल गयी तुम्हें है
लेकिन इस मथनी की रस्सी
भला कहो क्या मिली तुम्हें है?"

उत्तर सूझा नहीं इन्द्र को
हुआ सोच में बिल्कुल मौन,
फिर बोला—"यह कार्य करेगा
सिवा आपके जग में कौन?"

इसपर बोले अदिशेष झट—
"इन्द्र, मुझे अवकाश नहीं है,
फिर भी अपने मन में तुमको
होना अभी निराश नहीं है।

वासुकी मेरा भाई है
अमृत की दो उसको आशा,
तब वह मथनी की रस्सी बन
पूर्ण करेगा सबकी आशा।"

इतना कहकर आदिशेषजी
अन्तर्धान हुए तत्काल,
गये सदलबल इन्द्रदेव भी
उसी समय नीचे पाताल।

पातालपुरी में वासुकी ने
किया इन्द्र का स्वागत-मान,
बोला—"हो देवेन्द्र अगर तुम
तो मैं भी नागेन्द्र महान।"

नागराज से कहा इन्द्र ने
जब अमृत मंथन का हाल,
बहुत बहुत खुश होकर तब वह
चला क्षीरसागर तत्काल।

[९]

[राजकुमारी कान्तिमति ने चित्रसेन को बताया कि उसका पिता कपिलपुर के किले में कैद था। चित्रसेन जब अपनी सेना लेकर वहाँ पहुँचा, तो उसको बुर्ज पर सैनिक और किले पर मंडराते हुए भयंकर पक्षी दिखाई दिये। अमरपाल ने बताया कि उनको डराने के लिए जलती मशालें काफ़ी थीं। बाद में—]

अमरपाल की बातों में चित्रसेन को पूरा विश्वास हो गया। उस दिन सवेरे उसने स्वयं भयंकर पक्षियों के पिंजड़ों में आग लगाई थी और उनका सर्वनाश किया था। परन्तु उग्राक्ष में तब भी उन पक्षियों का भय न गया था।

"अगर जलती मशालें दिखाई गईं तो वे भयंकर पक्षी हम पर आक्रमण किये बगैर भाग जायेंगे! क्या यह सच है!" उसने उछलते हुए पूछा।

"ऐ मशाल!" अमरपाल ने आवाज़ लगाई। तुरत तेल में डूबी बड़ी बड़ी मशालें लेकर कुछ सैनिक उसकी ओर आगे आये।

अमरपाल ने उन्हें चित्रसेन को दिखाते हुए कहा—"महाराज, यदि आपने आज्ञा दी तो उनको जलाकर, सैनिक किले की

दीवारों की ओर चलेंगे। उनके साथ साथ और सैनिक भी जाकर सारे किले को घेर सकते हैं।"

"होय!" चिल्लाकर उग्राक्ष ने अपने राक्षसों की ओर इशारा करके जोर से ताली पीटी।

"सरदार, आये, आये।" कहते कहते राक्षस भागे भागे आये और उग्राक्ष को घेरकर खड़े हो गये।

"तुम में से कुछ बड़े बड़े पेड़ों को तोड़कर उनसे किले के फाटक तोड़ डालो, और बाकी फावड़े आदि लेकर किले की दीवारें उखाड़ फेंको।" उग्राक्ष ने अपने सेवकों को यों आज्ञा दी।

फिर चित्रसेन से उसने कहा—"महाराज, हमारे लिए यह अच्छा होगा कि सभी तरफ़ से किले में घुसे, न कि केवल मुख्य द्वार से ही। इस तरह करने से जो लोग किले में हैं, और बुर्जों पर हैं, वे एक साथ मिलकर हमारा मुकाबला नहीं कर सकेंगे। यह अमरपाल के जिम्मे रहा कि कोई भयंकर पक्षी हम पर आक्रमण न करे।"

"तुम डरो मत उग्राक्ष, तुम्हारी रक्षा का भार मुझ पर है।" अमरपाल ने अपने अनुचरों की ओर इशारा करते हुए उग्राक्ष से कहा।

"मानवाधम कहीं का। तुम मुझ जैसे महाराक्षस की रक्षा करोगे?" उग्राक्ष ने दान्त कटकटाये। उसने पत्थर की गदा ऊपर उठानी चाही।

"ठहरो उग्राक्ष!" राजकुमारी कान्तिमति ने इस तरह कहा, जैसे आज्ञा दे रही हो। "अगर आप अपना बल यहीं आजमाने लगे, तो किले में कैद किये गये मेरे पिता को शत्रुओं से खतरा पहुँच सकता है।

महाराज! आपने वचन दे रखा है कि आप मेरी सहायता करेंगे।" उसने चित्रसेन से कहा।

"हूँ!" चित्रसेन ने सिर हिलाया। फिर उग्राक्ष से कहा—"इसमें सन्देह नहीं है कि तुम राक्षसोत्तम हो। तुम्हें अपना बल अमरपाल पर दिखाने की जरूरत नहीं है। किले के शत्रुओं पर और किले पर गश्त करनेवाले भयंकर पक्षियों पर बल दिखाओ।"

चित्रसेन के यह कहते ही उग्राक्ष के मुँह पर जोश चमचमाने लगा—"अरे सेवको।" वह इस तरह चिल्लाया कि सारा जंगल गूँजने लगा।

तुरत राक्षस बड़े बड़े पेड़ों पर टूट पड़े। टहनियाँ आदि तोड़ ताड़कर, तनों को कन्धों पर डाल, शोर करते किले की ओर भागने लगे। उसी समय उनके पीछे चित्रसेन के सैनिक और चमकती मशालें लिए योद्धा भागे। पल भर में किले का प्रदेश रणध्वनि से गूँजने लगा। चित्रसेन और उसके पीछे कान्तिमति ने जोश दिलाते हुए अपने घोड़ों को आगे बढ़ाया। उग्राक्ष पत्थर की गदा को हवा में घुमाता गरज रहा था।

वे अभी किले की दीवारों से सौ गज की दूरी पर थे कि किले के बुर्जों पर से यकायक एक साथ राक्षस और सैनिकों पर बाण वर्षा होने लगी। उसी समय चित्रसेन की सेना के तीरन्दाज़ घुटनों के बल बैठ गये। निशाना लगाकर शत्रुओं पर छोड़ने लगे। इस बीच कुछ राक्षस किले के फाटकों के पास पहुँचे और पेड़ के तनों से वे किले के फाटक तोड़ने लगे। कई दीवारें तोड़ने में भी लग गये।

देखते-देखते ऐसा लगा, जैसे आकाश ही फूट पड़ा हो। सब अभी सम्भले ही
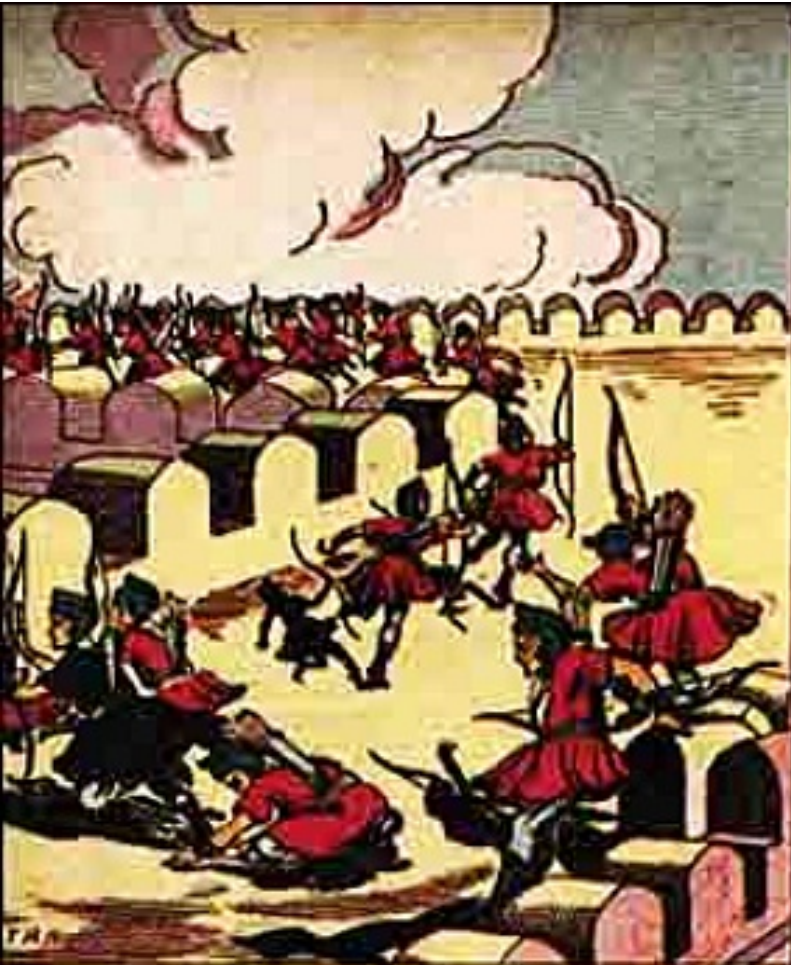
थे कि बवंडर की तरह वे भयंकर पक्षी सैनिकों की ओर आने लगे।

अमरपाल ने अपने हाथ की मशाल को—उनकी ओर दिखाते हुए कहा—"डरो मत, मशालों को उनकी ओर दिखाओ।" तुरत बीस तीस मशालें, जो लपटें उगल रही थीं, ऊपर भयंकर पक्षियों की ओर उठाई गईं।

वे भयंकर पक्षी जो सैनिकों पर हमला करने जा रहे थे, जोर से बुरी तरह चिलाते आकाश में उड़ गये। शेर का चमड़ा पहिननेवाले सवारों ने अंकुश उनके गलों पर भोंके। बहुत कोशिश की कि वे शत्रुओं पर हमला करें। पर पक्षी, जिन्होंने नीचे जलती मशालें देख ली थीं, उनके वश में न रहे। उनमें से एक ने सवार के अंकुश मारने पर आकाश में पलटी खाई। उसका सवार जोर से चीखता अंकुश को और जोर से पकड़कर, कलाबाजियाँ खाता उतने ऊपर से सेना के बीच आ गिरा। सेना में जयजयकार होने लगा। देखते-देखते वे भयंकर पक्षी आकाश में अदृश्य हो गये।

वे नागवर्मा के सैनिक, जो भयंकर पक्षियों का भरोसा करके, धीरज धरे, बुर्जों पर खड़े थे, एक सवार का मरना और पक्षियों का भागना देखकर डर गये। बुर्जों पर से कूदकर वे महल की ओर भागने लगे।

ऊपर से बाण वर्षा के रुकते ही चित्रसेन के सब सैनिक, किले के द्वार के पास पहुँचे और उन्होंने फाटक तोड़ डाले। इस बीच राक्षसों ने दीवार में भी एक बड़ा-सा छेद बना दिया था। वे उस छेद से किले के अन्दर जल्दी जल्दी चले गये।

इसके बाद बिना खास लड़ाई के ही राजमहल चित्रसेन के हाथ आ गया।
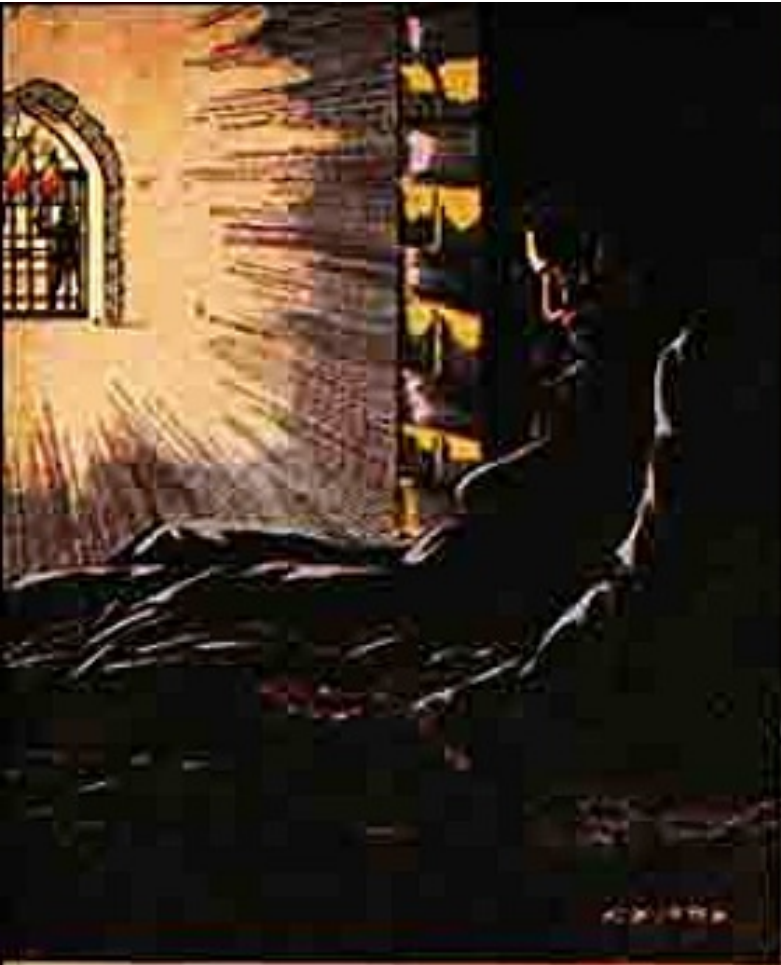
जिन नागवर्मा के सैनिकों ने जमकर लड़ने की कोशिश की, उनको उग्राक्ष के सैनिकों ने अपनी पत्थर की गदाओं से रुई की तरह धुन दिया।

यद्यपि किला और राजमहल चित्रसेन के वश में हो गया था पर यह न पता लगाया जा सका कि वीरसिंह को कहाँ कैद किया गया था। उसे यह भी सन्देह हुआ कि कहीं उनको चुपचाप नागवर्मा के सैनिक किले के बाहर तो नहीं ले गये थे।

परन्तु कान्तिमति का कहना था कि उसके पिता राजमहल के किसी तहखाने में बन्द थे। उसने सुझाया कि अच्छा होगा यदि सैनिक पाँच दस टुकड़ियों बनाकर, सब कमरे और तहखाने जाकर देखें।

उसके सुझाव पर सैनिक और राक्षस मिलकर सारा राजमहल छानने लगे। उन तहखानों में जहाँ अन्धेरा था, कहीं कुछ दीखता न था, सुनाई न देता था, यकायक किसी का कराहना सुनाई पड़ा। सैनिक मशालें लेकर वहाँ गये। कमरे में अन्धेरा था और बाहर सीखचोंवाला दरवाजा था और उस पर बड़ा ताला लगा हुआ था। जब उन्होंने सीखचों में से मशालें अन्दर करके देखा, तो उन्हें कहीं दूर दीवार के सहारे मनुष्य की आकृति-सी दिखाई दी।

"ये ही हैं, महाराजा वीरसिंह" एक सैनिक ने आवाज़ लगाई। तुरत महल के कोने-कोने से सैनिक और राक्षस भागे भागे आये। परन्तु कोई भी कमरे में न घुस सका। पहिले सीखचोंवाले दरवाजे पर लगे ताले को तोड़ना था।

सैनिकों का कोलाहल सुनकर चित्रसेन और कान्तिमति वहाँ आये। उन्हें मशालों

की रोशनी में कोई व्यक्ति दिखाई दिया। धीमे-धीमे कराहना भी सुनाई दिया। वे चौंके, घबराये।

"तुम सब यह क्या कर रहे हो! पहिले ताला तोड़ो।" चित्रसेन ने आज्ञा दी।

सैनिकों ने हथौड़ों से ताला तोड़ने की कोशिश की। उनकी मार से नारियल जितना बड़ा जंग खाया ताला, सनसनाया तो परन्तु टूटा नहीं।

"ताले पर जंग लगा है। महाराज, ताली मिल जाये तो अच्छा है।" एक सैनिक ने हाँफते हुए कहा।

"इसकी चाबी के लिए क्या तुम द्रोही नागवर्मा का आसरा लोगे!" कहकर चित्रसेन उसके हाथ से हथौड़ा लेने ही वाला था कि उग्राक्ष चिल्लाता-चिल्लाता वहाँ आया। उसको देखते ही कान्तिमति ने कहा—"उग्राक्ष, मेरे पिता को शत्रुओं ने इस काल कोठरी में बन्द कर रखा है। तुम तुरत ताला तोड़कर हमारी मदद करो। जल्दी करो।"

"यह भी कोई काम है!" उग्राक्ष सैनिकों को चीरता, आगे बढ़ा। ताले को हाथ में लेकर जोर से खींचा। पर ताला नहीं टूटा। इस बार उसने दोनों हाथों से खींचा। दरवाजों में फिर फिर आवाज हुई। पर ताला वैसे ही लगा रहा।

"ये नागवर्मा और उसके सैनिक विचित्र आदमी मालूम होते हैं। दरवाजों से तो ताला ही अधिक मजबूत मालूम होता है।" कहकर उग्राक्ष ने दो सीखचों को खींचा तो वे दोनों तरफ़ झुक गये। इस तरह रास्ता बन गया और उसमें से मशालची कमरे के अन्दर चले गये। मशालों की रोशनी में उन्होंने देखा कि दीवारों पर लगे कुन्डों से जंजीरें बंधी थीं और

जंजीरों से वीरसिंह के हाथ पैर बंधे हुए थे। उसके मुख पर कपड़ा बाँधा गया था।

अपने पिता को इस स्थिति में देखकर कान्तिमति—"पिताजी!" इस तरह चिल्लाई कि सब को कँप कँपी-सी हुई, वह उसकी ओर भागने लगी। चित्रसेन भी उसके साथ कमरे में घुसा। उसने वीरसिंह के मुँह पर बंधे कपड़े को खोल दिया। इस बीच उग्राक्ष ने उसके हाथों और पैरों में पड़े जंजीरों को तोड़ दिया। उनको छोड़ दिया।

"बेटी, मैंने न सोचा था कि मैं इस जन्म में तुम्हें फिर देख सकूँगा।" कहता वीरसिंह दीवार की तरफ़ लुढ़क-सा गया। इतने में एक सैनिक महाराजा के बैठने के लिए एक आसन लाया। एक और सैनिक प्यास बुझाने के लिए एक पात्र में जल लाया।

वीरसिंह ने प्यास बुझाकर आसन पर बैठते हुए कान्तिमति से कहा—"बेटी, क्या यह द्रोही नागवर्मा मारा गया है? या पकड़ा गया है?"

कान्तिमति हिचकती चित्रसेन की ओर देखने लगी। चित्रसेन ने आगे बढ़कर कहा—"महाराज, मेरा नाम चित्रसेन है। मेरे बारे में और मेरे राज्य के बारे में आपने सुन ही रखा होगा। इस राक्षस का नाम उग्राक्ष है। मेरा सेवक है। नागवर्मा मेरे पिता के धवलगिरि राज्य पर हमला करने गया हुआ है। उसको, यदि सम्भव हो, तो रास्ते में ही मारने के लिए मैंने अपने सेवक को भेजा है।"

(अभी है)

प्रियदर्शिका

वत्स देश के राजा उदयन के वासवदत्ता से विवाह करने से पहिले ही दृढ़वर्मा नाम के राजा ने उदयन के पास खबर भिजवाई कि वह अपनी लड़की प्रियदर्शिका को उसको विवाह में देना चाहता है। परन्तु इस बीच उज्जयनी के राजा प्रद्योत महासेन ने अपनी लड़की वासवदत्ता का वत्स के राजा के साथ विवाह करने के लिए एक चाल चली। उदयन को हाथी पकड़ने का शौक था। उदयन जब हाथी पकड़ने में मग्न था प्रद्योत के सैनिकों ने एक झूट-मूट के हाथी से उसे आकर्षित किया और उसे बन्दी बनाकर उज्जयनी ले गये।

प्रियदर्शिका, वासवदत्ता के लिए कोई परायी न थी। वे दोनों दो बहिनों की लड़कियाँ थीं, यद्यपि वे सगी बहिन न थीं। दृढ़वर्मा अपनी लड़की का वत्स के राजा के साथ विवाह तो कर ही न सका और इधर वह कलिंग के राजा के कोप का भाजन भी हुआ क्योंकि कलिंग के राजा ने पहिले ही दृढ़वर्मा को कहला भेजा था कि वह प्रियदर्शिका से विवाह करना चाहता था। यह देख कि वह अपनी लड़की का उसके साथ विवाह न कर रहा था कलिंग राजा ने क्रुद्ध होकर दृढ़वर्मा के किले को घेर लिया। वह जानता था कि उदयन, जो अपने शत्रु प्रद्योत के यहाँ कैदी था, दृढ़वर्मा की सहायता न कर सकता था।

परन्तु दृढ़वर्मा का एक नौकर था। उसका नाम था विनय वसु। यह सोच कि कभी न कभी तो उसके महाराजा की इच्छा पूरी होगी। वह प्रियदर्शिका को किले से कलिंग के राजा की नज़र बचाकर

अपने साथ ले गया। वह थोड़े समय बाद जाते जाते अपने मित्र विन्ध्यकेतु के पास गया, जो एक जंगल का राजा था। विनय वसु प्रियदर्शिका को उसके घर छोड़कर पासवाले अगस्त्य तीर्थ में स्नान करने गया।

इस बीच, उदयनने वासवदत्ता को अपहरण करके अपनी राजधानी में आकर उससे विवाह कर लिया था। यही नहीं, उसने अपने शत्रु जंगल के राजा को जीतने के लिए एक सेनापति को कुछ सेना के साथ भेजा। इससे पहिले कि विनय वसु अगस्त्य तीर्थ से वापिस आया उदयन के सैनिकों ने जंगल के राजा को युद्ध में मार दिया। उसके घर को जला दिया। प्रियदर्शिका को उसकी लड़की समझकर वे उसको साथ ले गये।

यह जानकर कि सेनापति जंगल के राजा की लड़की लाया था, उदयन ने बिना उसको देखे ही आज्ञा दी कि उसको वासवदत्ता की सहेली बनाया जाय। इतने में उसको दृढ़वर्मा के बारे में मालूम हुआ। क्योंकि वासवदत्ता की तरफ़ से वह उसका बन्धु होता था इसलिए उदयन ने अपने सेनापति को दृढ़वर्मा को कैद से छुड़ाने के लिए भेजा।

अब प्रियदर्शिका, अरण्यिका नाम से वासवदत्ता के पास रहने लगी। एक बार ऐसा हुआ कि उद्यान में प्रियदर्शिका और उदयन की अचानक आँखें चार हुईं। दोनों में यकायक एक दूसरे के लिए प्रेम उमड़ा। प्रियदर्शिका यह देख खुश हुई कि उसके पिता ने उसके लिए अच्छा वर ही सोचा था। उदयन यह सोचने लगा, पत्नी के पास रहनेवाली जंगल के राजा की इस लड़की को फिर कैसे देखा

जाये। इसके बारे में उदयन ने अपने मित्र विदूषक से कहा।

राजा के अन्तःपुर में एक सन्यासिनी रहा करती थी। उसने वासवदत्ता के अपहरण को कथावस्तु बनाकर एक नाटक लिखा था। उस नाटक को रानी वासवदत्ता के सामने खेलने की कोशिशें हो रही थीं। इसमें वासवदत्ता की भूमिका के लिए प्रियदर्शिका निश्चित हुई थी। उदयन की भूमिका मनोरमा नाम की सहेली को दी गई।

वह प्रियदर्शिका के प्रेम के बारे में सब कुछ जानती थी। वह राजा और प्रियदर्शिका का मिलाप करने के लिए भी सन्नद्ध थी। और विदूषक ने भी इस विषय में उसकी सहायता माँगी थी।

नाटक आरम्भ हुआ। प्रियदर्शिका वासवदत्ता के आभूषण पहिनकर रंगमंच पर आई। वह ठीक वासवदत्ता की तरह थी। क्योंकि वे सम्बन्ध में बहिनें ही थीं, इसलिए इसमें कोई आश्चर्य की बात न थी। चूँकि वासवदत्ता यह न जानती थी कि प्रियदर्शिका कौन थी, इसलिए वह चकित हुई। जब राजा का वेषधारी मंच पर आया तो वासवदत्ता के आश्चर्य की सीमा
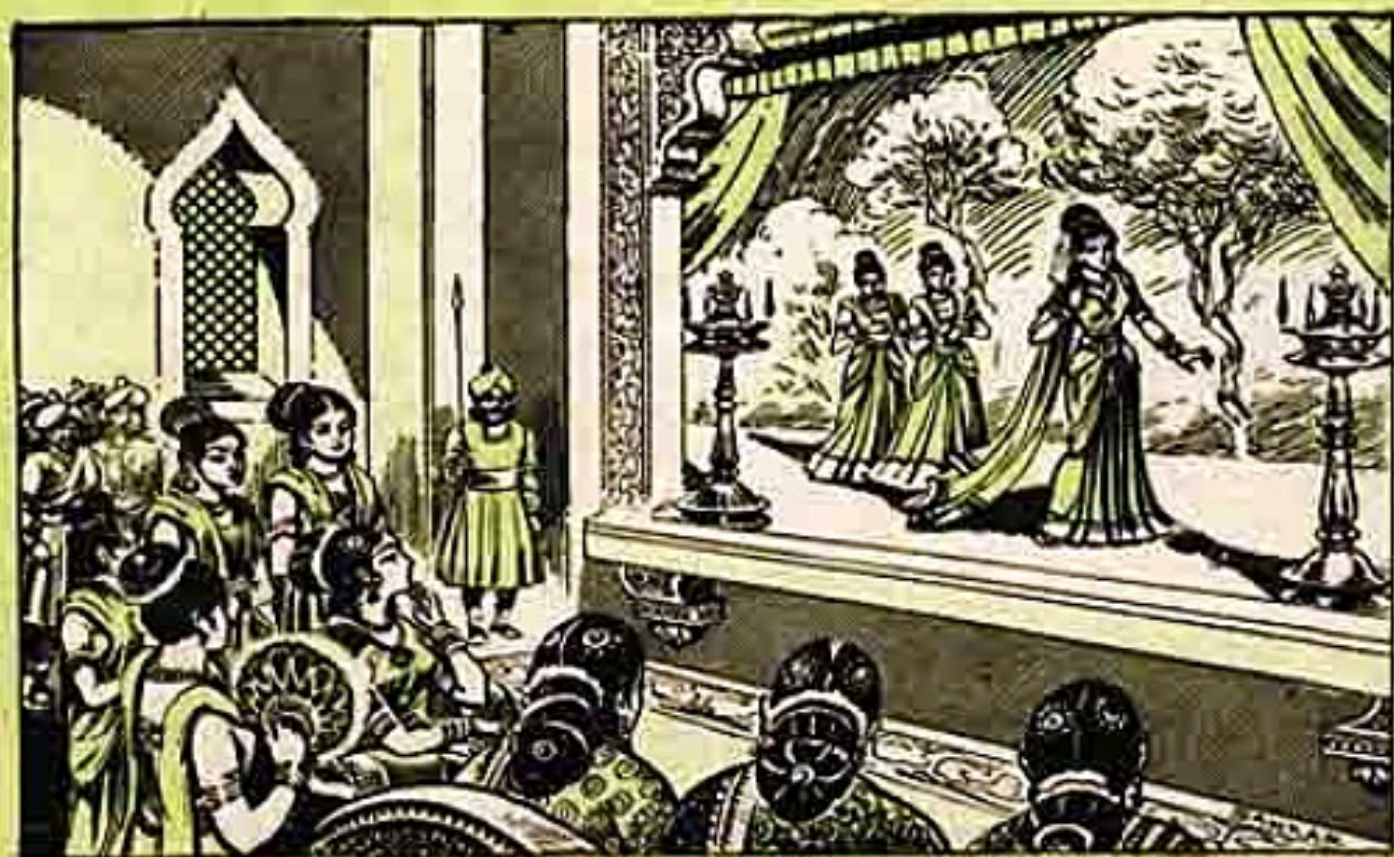
न रही। उसने खड़े होकर कहा—"जय महाराज की।"

पासवालों ने कहा—"महारानी वे महाराजा नहीं हैं। महाराजा का अभिनय करनेवाला कलाकार है।

परन्तु उदयन का पात्र करने के लिए रंगमंच पर मनोरमा नहीं आई थी; उदयन स्वयं आया था। वह विदूषक के साथ नेपथ्य में गया और उसने मनोरमा को समझाया। उसके आभूषण पहिनकर स्वयं मंच पर गया। मनोरमा, विदूषक एक तरफ़ बैठकर नाटक देखने लगे। थोड़ी देर बाद विदूषक सो गया।

अपनी कथा को रंगमंच पर देखकर वासवदत्ता को आश्चर्य हुआ। परन्तु कुछ बातों में उसने अवास्तविक कल्पना देखी। उदाहरण के लिए नाटक में उदयन और वासवदत्ता एक ही आसन पर बैठे हुए थे। "जब वे कैदी थे और मुझे उन्होंने वीणा सिखाने के लिए कहा था, तब मैं उनके साथ सक ही आसन पर कभी न बैठी थी।" उसने सन्यासिनी से कहा।

"नाटक में कुछ न कुछ तो कल्पना होती ही है।" सन्यासिनी ने कहा।

वासवदत्ता की बात कुछ भी हो, उदयन प्रियदर्शिका के साथ बैठकर बड़ा खुश हो रहा था। उसका हाथ पकड़कर वह तन्मय-सा हो गया।

यह देख वासवदत्ता झट से उठी। "मैं ऐसी झूठी बातें नहीं देखूँगी।" यह कहकर वह चली गई। चित्रशाला के द्वार के पास उसने विदूषक को सोते हुए देखा। उसने उसे उठाकर पूछा कि महाराजा कहाँ थे। उसने ऊँघते हुए कहा—"नाटक में खेल जो रहे हैं। क्या अभी नाटक खतम नहीं हुआ है?"

SANKAR.

"तो मनोरमा कहाँ है?" वासवदत्ता अभी पूछ रही थी कि मनोरमा दिखाई दी। "तुम्हारा तो अभिनय खूब रहा।" वासवदत्ता ने व्यंग्यपूर्वक कहा।

"मैं क्या करूँ! मैं रंगमंच पर जा रही थी कि यह विदूषक राहु की तरह आया। मेरे सब आभूषण छीन लिये। मुझे जाने न दिया।" मनोरमा ने कहा।

उदयन ने वासवदत्ता से क्षमा माँगी। प्रियदर्शिका जो सर्वथा निर्दोष थी, उसको उसने कैद में डलवा दिया। इतने में वासवदत्ता के पास उसकी माँ का पत्र आया। उसमें लिखा था कि उसकी मौसी का पति दृढ़वर्मा कलिंग के राजा से पराजित होकर कारागार में एक वर्ष से था। किसी को न मालूम था कि उसकी लड़की प्रियदर्शिका कहाँ चली गई थी। यह सुन वासवदत्ता दुखी हो रही थी कि दासियों ने आकर बताया कि कैद में अरण्यिका ने आत्महत्या करने लिए विष निगल लिया था।

वासवदत्ता पछताई कि उसने क्या किया था। अरण्यिका को—यानि प्रियदर्शिका को अपने पास बुलाया। उदयन विष के प्रभाव को हटाने का मन्त्र जानता था। वासवदत्ता को अब यह ही मालूम हो गया कि अरण्यिका उसकी बहिन प्रियदर्शिका ही थी। वासवदत्ता ने उदयन से प्रार्थना की कि वह प्रियदर्शिका के प्राण बचाये।

उदयन ने एक और शुभवार्ता भी वासवदत्ता को दी। उदयन का सेनापति युद्ध में कलिंग राजा को मारकर दृढ़वर्मा को विमुक्त करके तभी आया था।

एक क्षण में वासवदत्ता के दुःख के आँसू सुख के आँसुओं में परिवर्तित हो गये। उसने स्वयं उदयन का अपनी छोटी बहिन प्रियदर्शिका से विवाह करवाया। सब सुखपूर्वक रहने लगे।

बदसूरत बत्तख का बच्चा

एक नहर के किनारे एक बत्तख, झाड़ियों के पीछे अंडे देकर उन्हें सेती रही। कुछ दिनों बाद अंडे फूटे और प्यारे प्यारे बत्तख के बच्चे बाहर निकले। परन्तु बत्तख का सेने का काम जारी रहा। क्योंकि एक अंडा अभी तक फूटा न था, वह और अंडों से बड़ा भी था, इसलिए बत्तख फिर उस पर जा बैठ गई।

इतने में एक बूढ़ी बत्तख घूमती घामती उस तरफ़ आई। "बच्चों के साथ जाकर नहर में तैरती क्यों नहीं हो! यहाँ क्यों बैठी हुई हो! जाओ।"

मादा बत्तख ने कहा—"एक अंडा बाकी रह गया है। जाने कब टूटे।"

"जरा देखूँ तो।" बूढ़ी बत्तख ने कहा—"यह तो बत्तख का अंडा ही नहीं है, किसी टर्की का अंडा है। मैंने भी एक बार धोखे में टर्की के अंडों को सेया था। उनके बच्चे हुए। उन्हें मैंने बहुत मनाया, पर वे पानी की ओर आये ही नहीं। तुम नहीं समझती। मेरी बात तो मानो। तुम उस अंडे को वहीं छोड़ दो और अपने बच्चों को लेकर तैराओ।"

"इतने दिन सेया है। एक दो दिन और सेकर देखूँगी।" मादा बत्तख ने कहा।

"अच्छा, जैसी तेरी मर्जी" बूढ़ी बत्तख यह कहकर चली गई।

जैसे भी हो, एक दिन वह बाकी अंडा भी फूट पड़ा। उसमें से एक बड़ा बत्तख का बच्चा, एकदम बदसूरत-सा निकला। "शायद यह कम्बख्त टर्की का ही बच्चा

हान्स क्रिश्चियन अन्डर्सन

है। पानी में डाला जाये, सच मालूम हो जायेगा।" मादा बत्तख ने सोचा।

मादा बत्तख बाक बाक करती नहर में कूदी। फिर बच्चे एक के बाद एक पानी में कूदे, डूबे और फिर ऊपर उठ आये। भूरे रंग का बदसूरत बत्तख का बच्चा भी उनके साथ तैरा।

"यह मेरा बच्चा है। टर्की नहीं है। देखो कितनी अच्छी तरह तैर रहा है।" मादा बत्तख ने सोचा।

तैरने के बाद वह अपने बच्चों को लेकर उस जगह गई जहाँ बत्तखें रहा करती थीं। "छी, छी, यह क्या बत्तख है। इतनी गन्दी है।" बत्तखों के बच्चों ने उस बदसूरत बत्तख को बहुत चिढ़ाया सताया। बिचारा वह बच्चा बड़ा दुःखी हुआ।

जैसे जैसे दिन बीतते गये वैसे वैसे उसका दुःख बढ़ता गया। कम नहीं हुआ। आखिर उसकी माँ ने ही उसे लताड़ा—"तुझे बिल्ली भी तो पकड़कर नहीं ले जाती! अगर तुम इन बत्तखों के बीच न रहकर कहीं और रहो, तो भी अच्छा हो। अच्छी आफ़त आ पड़ी है।"

आखिर एक दिन वह बदसूरत बत्तख का बच्चा, बत्तखों के उस झुण्ड को छोड़कर दल दल में गया। वहाँ गन्दा पानी और कीचड़ अधिक था। वहाँ बहुत से पक्षी रहा करते थे। बदसूरत बत्तख का बच्चा उनसे जा मिला और पासवाले झाड़ियों में उसने भी घर बना लिया।

"तुम इतने बदसूरत कैसे पैदा हुए!" पक्षियों ने बत्तख के बच्चे से पूछा। पर उन्होंने उसको छेड़ा छाड़ा नहीं। तंग भी न किया।

दो दिन बाद शिकारी आये, उन्होंने उस प्रान्त को घेर लिया। गोलियाँ छोड़ीं।

कुछ पक्षी मरकर गिर गये। दल दल का पानी खून के कारण लाल लाल हो गया। शिकारियों के कुत्ते पक्षियों को पकड़कर ले जा रहे थे।

बत्तख के बदसूरत बच्चा का दिल धड़ धड़ कर रहा था। वह अपनी जगह सिकुड़कर बैठ गया। एक शिकारी कुत्ता, जीभ हिलाता, दान्त दिखाता उसके पास आया। उसको उसने देखा। परन्तु वह बत्तख के बच्चे को अपने मुख में रखे बगैर ही चला गया।

"अच्छा हुआ कि मैं गन्दा हूँ। भोंडा हूँ। कुत्ता भी मुझे बिना छुये चला गया।" बत्तख के बच्चे ने सोचा।

शाम तक बन्दूकें चलती रहीं। फिर उनका शोर खतम हो गया। काफ़ी देर तक वह बिना हिले डुले वहाँ पड़ा रहा, फिर वह बत्तख का बच्चा दल दल से चला गया।

क्योंकि रास्ते में वर्षा होने लगी थी इसलिए उसकी यात्रा आगे न चल सकी। अन्धेरा होते होते वह एक किसान की झोपड़ी के पास पहुँचा, पर वर्षा बढ़ती जाती थी। यह बच्चा वर्षा का भार न सह सका, वह झोपड़ी में घुस गया।

अगले दिन किसान की पत्नी ने देखा कि बिल्ली और मुर्गी के सिवाय अब उसको बत्तख भी मिल गया था।

उसने मन ही मन सोचा—"वाह, अब मैं बत्तख के अंडे भी खा सकूँगी।" उसने बदसूरत बत्तख को तीन सप्ताह पाला परन्तु उसने एक भी अंडा न दिया।

"वह बत्तख भी क्या जो अंडे न दे।" बिल्ली और मुर्गी ने ताना कसा।

"तो क्या मैं चला जाऊँ!" बत्तख के बच्चे ने पूछा।

"हाँ, हाँ, जाओ, मज़े से जाओ।" बिल्ली और मुर्गी ने कहा। इसके बाद

उस बदसूरत बत्तख के बच्चे ने पानी में तैरता, मज़ा करता, कुछ समय काट दिया। जल के और पक्षियों ने उसको हीन दृष्टि से देखा। इसका केवल कारण यही था कि वह सुन्दर न था।

इतने में सरदियाँ आईं। ठंड अधिक पड़ने लगी। जब वह उड़ता, तो ऐसा लगता जैसे अंग-अंग जम-सा गया हो। इस ठंड के कारण बत्तख के बच्चे को बहुत तकलीफ़ हुई। एक दिन शाम को उसको आकाश में पक्षियों का एक झुण्ड दिखाई दिया। उनके शरीर इतने सफ़ेद थे कि आँखें चौंधियाँ जाती थीं। उनकी गर्दनें बड़ी-बड़ी थीं। वे हँस थे। वे विचित्र आवाज़ करते जिस प्रान्त से आये थे उस प्रान्त की ओर चले गये।

उनको देखकर बदसूरत बत्तख के बच्चे के मन में विचित्र भाव उठे। वह उनको भूल न सका। वह जाने क्यों उनको बहुत चाहने लगा।

सरदी बढ़ती जाती थी। जिस पानी में बत्तख का बच्चा रहता था, वह भी जम गया। कहीं पानी पूरी तरह जम-जमा न जाय, उसे पानी में इधर उधर तैरना पड़ा।

आखिर वह इतना थक गया कि हिल न सका। उसके चारों ओर का पानी जम गया। बत्तख उस बर्फ में फंस गया और बेहोश हो गया।

अगले दिन सवेरे किसी किसान ने उसको देखा। उसने चप्पू से बत्तख के चारों ओर का बर्फ तोड़ दिया और बत्तख को उठाकर ले गया। उसने उसे अपनी पत्नी को दिया। तब तक उसको होश आ गया था।

किसान के बच्चे उससे खेलने के लिए उसके आगे पीछे भागने खेलने लगे। जाने ये बच्चे क्या करें, इस डर से बत्तख का बच्चा अन्धाधुन्ध भागने लगा। उसने दूध का बर्तन धकेल दिया। मक्खन के पात्र में जा पड़ा। आखिर वह खुले दरवाज़े से बाहर बर्फ पर और फिर झाड़ियों के पीछे जा छुपा।

उन सर्दियों में उसको कितनी दिक्कतें झेलनी पड़ीं, हम इसका अनुमान भी नहीं कर सकते। सूर्य फिर आया। धूप होने लगी। बसन्त आया। पक्षी फिर मीठा-मीठा कलरव करने लगे। यह बत्तख भी पंख फड़फड़ाता उड़ा। अब उसके
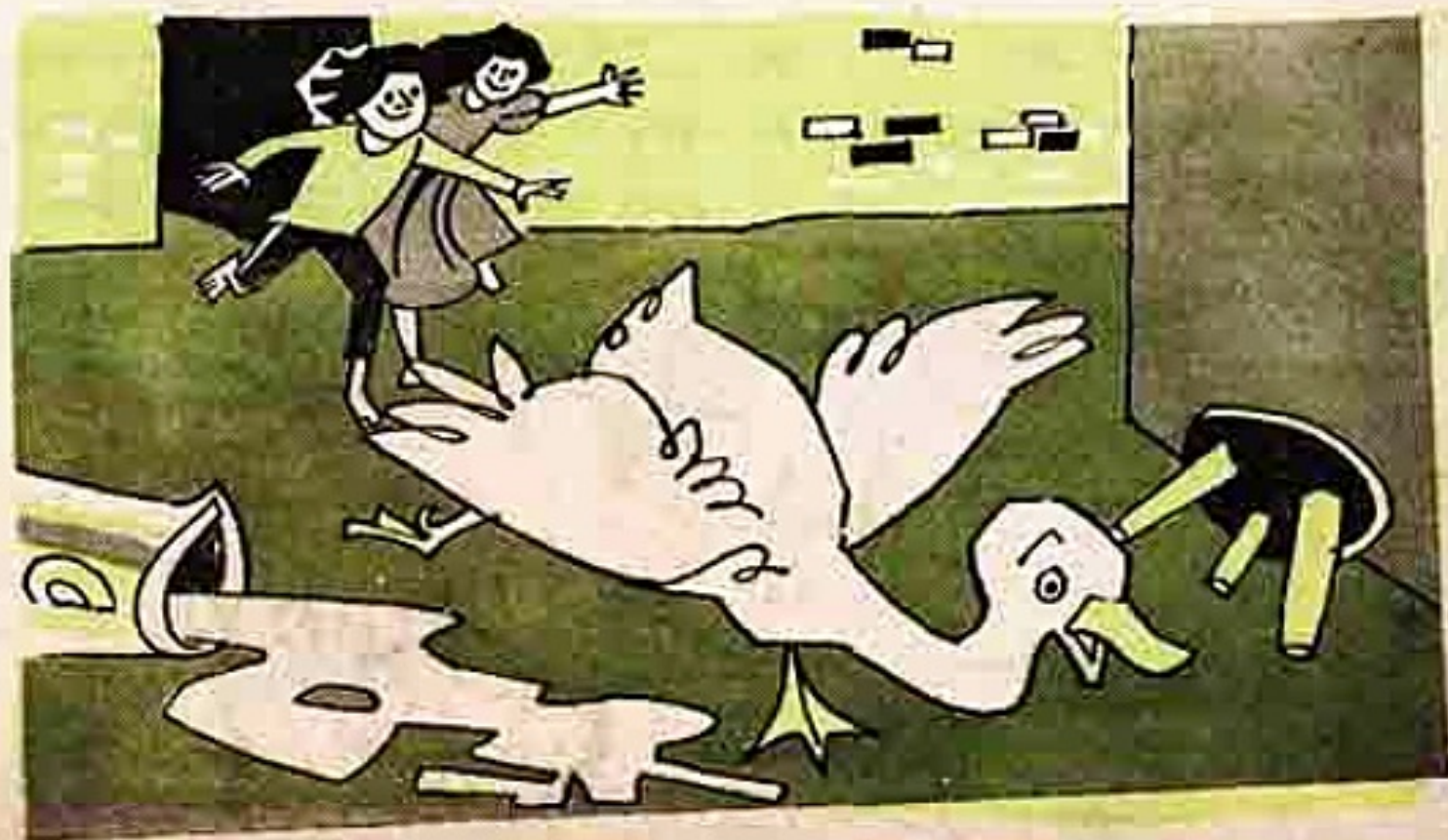
पंख बड़े मज़बूत हो गये थे। वह उड़ता उड़ता एक सुन्दर बगीचे में पहुँचा। वहाँ बड़े बड़े वृक्ष थे, झाड़ियाँ थीं। पास ही नदी थी।

अभी हमारा बत्तख देख ही रहा था कि तीन सफ़ेद हँस, पंख फड़फड़ाते, झाड़ियों में से होते पानी में कूदे।

उनको और उनके सौन्दर्य को देख, वह अपने को भूल-सा गया।

"कितने सुन्दर पक्षी हैं। पक्षियों के राजा हैं। उन बत्तखों से सताये जाने की अपेक्षा इनके हाथ मारा जाना अच्छा है।" बत्तख का बच्चा पानी पर मँड़राया। फिर हँसों के सामने तैरता गया। वह उनके पास गया। सिर झुकाकर उसने कहा—"मारो।"

तुरत उसको पानी में अपना प्रतिबिम्ब दिखाई दिया। वह चकित रह गया। क्यों? वह भी हँसों की तरह था। उसका आनन्द वर्णनातीत था। बाकी हँसों ने उसको घेर लिया और अपनी चोंचों से उसको सवाँरा, सहाला।

इतने में कुछ बच्चे बाग में भागे-भागे आये। वे नये पक्षी को देखकर, चिल्लाते तालियाँ पीटते माँ-बाप के पास गये। उनसे कहा—"एक और हँस आया है।" उन्होंने रोटी, केक आदि लाकर पानी में फेंके। "छोटा-सा प्यारा हँस, पुराने हँसों से बहुत अच्छा है।"

"मैं जब बदसूरत बत्तख था, मैंने कभी सपने में भी न सोचा था कि मुझे कभी इतना आनन्द मिलेगा।" हँस ने सोचा।

वीर पराक्रमी

एक समय था, जब कलिंग और बंग देश की सीमा पर एक किला था। वह देखने में तो किले की तरह था, बुर्ज थे, परकोटे थे। सब कुछ था। परन्तु वह किसी काम का न था। इस किले में जितवर्मा नाम का एक बावला रहा करता था। उसके पूर्वजों ने कभी राज्य किया था। क्योंकि उसकी धमनियों में उनका खून बह रहा था, इसलिए वह भी अपने को महावीर समझा करता था। "हमें देखकर, सब कोई घबरा उठता है। इसलिए हमारे किले पर कोई हमला नहीं करता। यदि अर्जुन और कर्ण भी एक साथ मिलकर आयें, तो मेरा मुकाबला नहीं कर सकेंगे।" जितवर्मा शेखियाँ मारा करता।

अड़ोस पड़ोस के लोग जब उसके पास होते तो यह दिखाते कि उनको उसकी शेखियों पर विश्वास था, पर पीठ पीछे उसकी हँसी उड़ाया करते। अपनी शेखियाँ सच साबित करने के लिए जितवर्मा कभी कभी किसी जमीन्दार की सम्पत्ति लूटने का प्रयत्न करता। वह यदि कोई मुर्गी या भेड़ उठा ले जाता, तो जमीन्दार ख्याल न किया करते। अगर इससे बड़ी चीज़ों को चुराने की कभी वह ठानता, तो वे अपने नौकरों को भेजकर, जितवर्मा और उसके साथियों को पिटवाया करते। एक बार इसी तरह मार खाकर जितवर्मा ने कहा— "डरपोक कहीं के, हिम्मत थी तो खुद सामने आकर लड़ते! अपने नौकरों को भेजते हैं! मैं ऐसे नीचों से नहीं लड़ता।"

जब डाके पर जाता, और घायल होकर आता, तो जितवर्मा की पत्नी उसकी मरहम पट्टी किया करती। वह जानती थी कि

जगमोहन

उसका पति बावला था। पर क्या करती? उसको उकसाने के लिए वह कहा करती— "देखिये, सब घाव पीठ पर ही हैं। अगर हिम्मतवाले होते तो सामने आकर चोट करते!"

"मेरे सामने आने की उनके पास हिम्मत कहाँ है?" जितवर्मा कहा करता।

एक दिन सवेरे एक विचित्र बात हुई। किले के बुर्ज़ पर पहरा देनेवाले नौकर ने आकर जितवर्मा से हाँफते हुए कहा— "मालिक, एक बड़ी सेना हमारे किले पर हमला करने आ रही है।" जितवर्मा बुर्ज़ पर गया। उसने देखा कि कलिंग देश की ओर से एक बड़ी सेना आ रही थी। उस सेना में रथ, घोड़े, और हाथी वगैरह थे।

जितवर्मा ने अपने नौकरों से कहा— "ये कलिंग हमारे किले पर हमला करने आ रहे हैं। मेरे बाण, धनुष, भाले वगैरह बुर्ज़ पर रखो। मैं अकेला ही इस सेना का नाश करके विजय लक्ष्मी पाऊँगा। कलिंग राजा को मैं अपना सामन्त बना लूँगा।" वह कदम पटकने लगा।

नौकरों ने विश्वास न किया कि इतनी बड़ी सेना किले पर हमला करने आ रही थी। अगर उन सैनिकों ने एक एक करके एक एक पत्थर भी उठाया, तो किला नहीं रहेगा। वे बीस हज़ार थे।

जल्दी ही यह स्पष्ट हो गया कि कलिंग की सेना जितवर्मा से लड़ने आई थी, उस सेना ने किले से एक फर्लांग की दूरी पर पड़ाव किया। सेनापति घोड़े पर सवार हो किले के पास आया। सिर उठाकर उसने बुर्ज़ पर खड़े जितवर्मा से कहा— "इस किले में कौन पराक्रमी रहता है?"

"पूछने की क्या जरूरत है? मैं ही हूँ।" जितवर्मा ने शान से कहा।

"तो तुरत अपना किला हमें सौंप दो। नहीं तो युद्ध में तुम्हें और तुम्हारे किले का मटिया मेट कर देंगे। कलिंग देश की आज्ञा पर हम बंग देश जीतने निकले हैं।" कलिंग के सेनाधिपति ने कहा।

"अरे, तुम्हारे राजा की इतनी धौंस! देख, तुझे और तेरी सेना को अभी यम के पास भेजता हूँ। जितवर्मा के तुमने समक्ष क्या रखा है!" कहकर जितवर्मा ने शत्रु सेनापति पर बाण छोड़ा। बाण सेनापति से काफ़ी दूर पड़ा।

सेनापति ने संकेत किया। थोड़ी सेना आगे आई और किले पर बाण छोड़ने लगी। जितवर्मा को जोश आ गया, वह सैनिकों पर बाण वर्षा करने लगा। उसके बाण या कलिंग देश के सैनिकों के बाण किसी को न लगे। किसी को कोई हानि न हुई। आधा घंटा युद्ध होने के बाद कलिंग की सेना पीछे हटी। "डरपोक कहीं के। पीछे हट गये। वे मेरा पराक्रम क्या जानें।" जितवर्मा ने कहा।

परन्तु कलिंग देश की सेना पूरी तरह गई नहीं। किले से फर्लान्ग की दूरी पर उन्होंने डेरा डाला। रोज़ सवेरा आध घंटा, शाम को आध घंटा, थोड़े सैनिक आगे आते किले की दीवारों पर बाण छोड़ कर फिर पीछे हट जाते। जब तक वे बाण छोड़ते, जितवर्मा चिल्लाता, शोर करता, बाण छोड़ता, शेखियाँ मारता।

इस प्रकार दस दिन बीतने के बाद कलिंग का सेनापति घोड़े पर सवार हो किले के पास आया। "जितवर्मा, हम युद्ध में हार गये हैं। सन्धि करने के लिए किले के द्वार खोलो।"

"अगर यह काम पहिले ही जो कर लेते, तो हम दोनों को कम तकलीफ़

रहती।" कहते हुए जितवर्मा ने किले के फाटक खुलवाये। शत्रु सेनापति को उसने अन्दर आने दिया।

"क्या अब से आपका कलिंग राजा मेरा सामन्त होकर मुझे कर देगा!" जितवर्मा ने सेनापति से पूछा।

"अभी नहीं, पहिले यह लिखकर दीजिये कि हमारी सेना के आधे से अधिक लोग युद्ध में मारे गये हैं और आधे आपके हाथ कैदी हो गये हैं।" कलिंग के सेनापति ने कहा।

उसका लिखा लेकर, सेनापति सेना के साथ बंग राजा के पास गया। असली बात यह थी कि कलिंग राज्य को हड़पने के लिए एक चाल चली गई थी। यह कहकर कि बंग राज्य को वश में करूँगा, सेनापति सेना के साथ निकल पड़ा। सीमा पर उसे जो किला दिखाई दिया—उसपर हमला करने के लिए युद्ध का नाटक किया। उसने जितवर्मा से लिखवा लिया कि उसकी आधी सेना नष्ट हो गई थी और सेना बंग के राजा को सौंप दी। कुछ सैनिकों को साथ लेकर वह अपने देश वापिस गया। इसके बाद बंग देश की सेना ने कलिंग पर हमला किया और उसको जीत लिया।

यह सब जितवर्मा और सीमा प्रदेश में रहनेवालों को नहीं मालूम था। बहुत समय तक यह कहा गया कि जितवर्मा बहुत बड़ा योद्धा था, कलिंग की सेना का, जिसने उसपर आक्रमण किया था, अकेले ही उसने नाश कर दिया था। जितवर्मा का भी यही विश्वास था कि उसने अपने पराक्रम से कलिंग की आधी से अधिक सेना का नाश किया था। क्योंकि किसी ने यह युद्ध देखा न था, इसलिए सचमुच क्या हुआ था, किसी को न मालूम हुआ।

[६]

जब वह कुबिलायखान की नौकरी में ही था कि मार्कोपोलो को राज्य के कार्य पर पश्चिम की ओर चार महीने यात्रा करनी पड़ी। खान-बालिक (पेकिन्ग) से चलने के बाद, तीन सप्ताह की यात्रा के उपरान्त काय-चु का दुर्ग मिला। इस दुर्ग को पहिले किसी ज़माने में सोने के राजा ने बनवाया था। यह सोने का राजा बड़ा शक्तिशाली था। उसकी सेवा करने के लिए सुन्दर नवयुवतियाँ ही काम करती थीं। कई सारी युवतियाँ उसकी नौकरी में थीं। वह अपने महल के आस पास एक हल्के रथ पर चढ़कर घूमा करता। वे लड़कियाँ रथ खींचतीं।

सोने का राजा होने को तो उन्ग खान (प्रेस्टर जान) का सामन्त था परन्तु चूँकि वह शक्तिशाली था, इसलिए उसने उसकी परवाह न की। दोनों में युद्ध हुआ। उन्ग खान, सोने के राजा को हरा न सका, चूँकि उसका दुर्ग अभेद्य था। उन्ग खान गुस्से में जलने-सा लगा। तब उसके सात नौकरों ने प्रतिज्ञा की कि वे सोने के राजा को जीवित पकड़कर अपने राजा को सौंप देंगे। उन्ग खान यह सुनकर खुश हुआ। उसने कहा कि यदि उन्होंने यह कर

दिखाया तो वह उनको अपनी ओर से इनाम देगा।

वे सातों निकलें। उन्होंने सोने के राजा के यहाँ नौकरी करनी शुरू की। उन्होंने दो वर्ष तक खूब सेवा की। फिर वे उसके विश्वासपात्र भी हो गये। उसको उन पर अपने पुत्रों से भी अधिक विश्वास था। जब कभी वह शिकार पर जाता, तो उनको साथ ले जाता।

एक बार जब वह शिकार पर जा रहा था, तो उन सात नौकरों को भी ले गया। साथ कुछ और भी थे। राजमहल से एक मील की दूरी पर एक नदी आई। राजा ने और लोगों को नदी के किनारे छोड़ दिया और सात नौकरों के साथ नदी पार कर गया। ऐसे मौके के लिए ये सातों नौकर प्रतीक्षा कर रहे थे। सोने के राजा की रक्षा करने के लिए वहाँ कोई न था।

उन्होंने तल्वार पकड़कर पूछा—"तुम हमारे साथ आते हो, या मरते हो!" राजा को उनकी हरकत देखकर अचरज हुआ—"यह क्या! तुम मुझे कहाँ साथ बुला रहे हो!"

"अपने राजा उन्ग खान के पास।" उन्होंने जवाब दिया।

"तुम मुझे इतना धोखा कैसे दे सके! मैंने तुम्हें अपने पुत्रों से भी अधिक समझा, क्या इससे बढ़कर भी कोई कृतघ्नता है कि जो हाथ खिलाये, उसे ही काटो!"

वे सोने का राजा को उन्ग खान के पास ले गये।

उन्ग खान ने सोने के राजा को देखकर कहा—"तुम्हें देखकर मुझे बड़ी खुशी हो रही है। तुम जानते हो, तुम्हारा कैसे स्वागत किया जायेगा!"

सोने के राजा को न सूझा कि क्या कहे। उन्ग खान ने उसको पशुपालक का

काम दिया। सोने के राजा का अपमान करने के लिए उसने उसको यह दण्ड दिया।

दो साल सोने के राजा ने पशुपालक का काम किया। तब तक राजसैनिकों का उस पर पहरा रहा। दो साल बाद उन्ग खान ने सोने के राजा को बुलवाया। उसको राजा की पोषाक देकर उसका सत्कार किया—"अब तो समझे कि मुझ से दुश्मनी मोल लेना अच्छा नहीं है, महाराज?

"हाँ महाराज, मैं जानता था कि आपका विरोध करके कोई जी नहीं सकता। सोने के राजा ने कहा।

"यही मैं चाहता हूँ।" कहकर उन्ग खान ने उसको एक घोड़ा और कुछ नौकर चाकर देकर भेज दिया।

* * *

मार्कोपोलो के मार्ग में एक और नगर आया, इसका नाम था वोचान। इसके बारे में भी एक कथा थी। १२७२ ई. वी. से पहिले बेन्गाल और बर्मा देशों का एक राजा हुआ करता था। वह बड़े खान के नीचे न था। यह देख कि वोचान को हमले का भय था बड़े खान ने

नजुरुद्दीन नामक तातार नायक के नीचे कुछ सेना वोचान भेजी।

इस सेना का मुकाबला करना बेन्गाल-बर्मा के राजा ने अपना धर्म समझा, बड़ी से सेना लेकर उसने कूच की। उस सेना में दो हज़ार हाथी थे जिन पर अम्बारियाँ थीं। एक एक अम्बारी में १२ से लेकर सोलह योद्धा थे। इन हाथियों के अलावा उस सेना में चालीस हज़ार सैनिक थे। इनमें अधिकांश घुड़सवार थे।

यह सेना देखकर नजुरुद्दीन घबरा गया। उसके पास केवल बारह हज़ार घुड़सवार

थे। फिर भी उसने अपने सैनिकों को युद्ध के लिए सन्नद्ध किया और जो होना था, उसकी प्रतीक्षा करने लगा। बर्मा बेन्गाल के राजा की सेना के दीखते ही, तातारों के घोड़े, हाथियों को देखकर डरकर पास के जंगलों में भाग गये। उनको पकड़ना मुश्किल हो गया।

यह एक प्रकार से अच्छा ही हुआ। तातार सैनिक पेड़ों के पीछे अपने घोड़ों से उतर गये और बर्मा-बेन्गाल के राजा के सैनिकों पर बाण वर्षा करने लगे। हाथियों को घायल कर दिया। हाथी चिंघाड़ते इधर उधर भाग गये। उनके साथ घोड़े भी भाग निकले। इस समय तातारों ने अपने घोड़ों पर चढ़कर उनका पीछा किया।

दोनों पक्ष के लोग तलवार और गदा लेकर युद्ध करने लगे। इस युद्ध में राजा की सेना को बहुत चोट लगी। राजा बाल बाल बचा और योद्धा भी भाग गये। नहीं तो वे भी उस दिन युद्धभूमि में मारे जाते।

तातारों ने हाथियों को पकड़ने के लिए उनके रास्तों में पेड़ काटकर डाल दिये, और भी कई प्रयत्न किये। परन्तु वे सब प्रयत्न व्यर्थ रहे। आखिर राजा के उन सैनिकों ने, जो कैदी बना लिए गये थे, कुछ हाथियों को पकड़कर दिया। इस तरह तातारों को दो सौ हाथी मिले। इसके बाद बड़े खान के साथ बहुत-से हाथी भी जाने लगे।

इस युद्ध के बाद बेन्गाल-बर्मा का राजा भी बड़े खान के आधीन हो गया।

(अभी है)

जीवन का मोह

विक्रमार्क ने अपना हठ न छोड़ा। वह फिर पेड़ के पास गया। वृक्ष पर से शव उतारकर कन्धे पर डाल हमेशा की तरह चुपचाप श्मशान की ओर चल पड़ा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा—"राजा, तुम्हारी लगन सचमुच निराली है। ऐसे लोग भी, जिनको जीवन पर बहुत मोह होता है, जब उनके प्रयत्न सफल नहीं होते तो निराश हो प्रदीप की तरह आत्महत्या तक करने पर तुल जाते हैं और एक तुम हो, जो बार बार असफल रहने पर भी अपना काम करते हो, यह आश्चर्यजनक है। तुम्हें थकान न मालूम हो इसलिए प्रदीप की कहानी सुनाता हूँ।" उसने यों कहानी सुनानी शुरु की।

विदिशा नगर में प्रदीप नाम का एक नौजवान रहा करता था। उसके माँ बाप छुटपन में ही गुज़र गये थे। भाई-बहिन भी
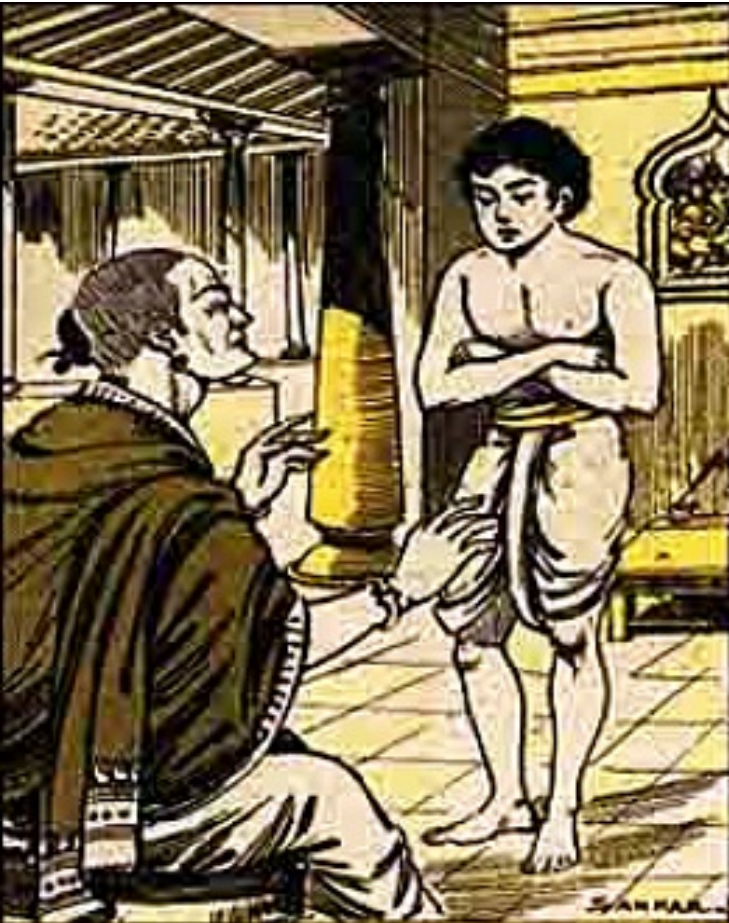
न थे। और तो और सगे सम्बन्धी तक न थे। यही नहीं उसका घर-आसरा भी कोई न था। जब से उसने होश सम्भाला था वह अनाथ ही था। छुटपन में उसने एक गुरु का आश्रय लिया। उसके घर उसने थोड़ा बहुत पढ़ा लिखा। चूँकि वह गुरु-दक्षिणा नहीं दे सकता था, इसलिए उसको गुरु ने विशेष शिक्षा न दी, पर काम-काज उससे खूब करवाया। वह जब पन्द्रह-सोलह साल का हुआ तो गुरु ने उससे कहा—"अब तुम बड़े हो गये हो। जो कुछ तुझे पढ़ाया जा सकता था वह सब पढ़ाया जा चुका है। कहीं जाकर किसी का आश्रय लेकर आजीविका का मार्ग ढूँढ़ो।" उसने यह कहकर उसको भेज दिया।

प्रदीप ने देश में घूमना फिरना शुरु किया। उसके लिए ऐसी जगह न थी जहाँ वह अपना सिर ढाँप सके। हर रोज़ एक नयी जगह वह जाता। रास्ते में ख्वाब देखता कि आनेवाले गाँव में उसको कोई रखेगा, उसको जीने का रास्ता मिल जायेगा, वह भी समाज में प्रविष्ट हो सकेगा, दूसरों के कष्ट-सुख सुन सकेगा, अपने सुना सकेगा। यूँ कल्पना किया करता। पर जब वह उस ग्राम में पहुँचता तो कोई उसकी परवाह न करता। उसका कोई हाल चाल तक न पूछता। थोड़ी भीख माँग-मूँगकर खा पी लेता। किसी पेड़ के नीचे सो जाता। फिर एक और गाँव के लिए निकल पड़ता।

इस तरह प्रदीप पाँच छः वर्ष तक घूमता-भटकता रहा। सुख किसको कहते हैं, वह न जानता था। इसलिए वह यह भी न सोच पाता था कि वह कितने कष्ट झेल रहा था। दूसरों के बीच सम्बन्ध, बन्धुत्व देखकर उसने सोचा संसार में

सचमुच एक ही आनन्द है—वह यह कि सन्तोष हो या कष्ट उसको दूसरों के साथ हिस्सा बँटाना। बड़े बड़े घरों में रहना, अच्छी अच्छी पोषाक पहिनना या खूब खाना-पीना वास्तविक आनन्द न था। जब भूख होती है तो चाहे कुछ भी खाओ, वह स्वादिष्ट लगता है। थक जाने पर पेड़ के नीचे सोने में भी मज़ा आता है—वह अपने अनुभव से जान गया था। पर उसे एक ही आनन्द न था, वह यह कि वह दूसरों के आनन्द और दुख में हिस्सा नहीं बँटा पा रहा था। वह जब पाँच दस को बैठा हँसता या दुखी होता देखता तो ईर्ष्या करता। उसे यह सोच बड़ा दुख होता कि उसके सुख दुख में भाग लेनेवाले बन्धु नहीं थे, मित्र नहीं थे।

उसे कभी कभी अपने जीवन से वैराग्य हो उठता। "इतने बड़े संसार में हर किसी का कोई न कोई ऐसा है जिसको वह अपना कह सकता है। मैं ही एक ऐसा हूँ, जिसका कोई नहीं है। मैं जिन्दा हूँ पर मेरी गिनती मुरदों में ही है। तो सचमुच मर जाने में ही क्या है!" वह सोचा करता।

परन्तु एक आशा उसे आत्महत्या करने से रोक रही थी। उसे विश्वास था कि उसे कभी न कभी कोई न कोई अपने आश्रय में लेगा और अपना विश्वासपात्र समझेगा। इसी विश्वास में वह कभी कभी अनजानों से भी बातचीत करने की सोचता। पर उसकी ओर देखकर हँसनेवाले भी हँसना छोड़ देते। उसके पास आते ही बात करनेवाले बात करना बन्द कर देते।

आखिर ऐसा भी समय आया जब कि उसने दिन में सपने लेने छोड़ दिये। जीवन पर उसको वैराग्य हो गया। विरुपा

नगर की ओर जाते हुए रास्ते में नदी में कूदकर उसने आत्महत्या करने की ठानी। वर्षा के कारण नदी में बाढ़ आई हुई थी। पर प्रदीप तैरना जानता था। इसलिए नदी में कूदकर मर जाना उसके लिए आसान न था। प्रदीप ने सोचा कि नदी में कूदकर वह तब तक हाथ पैर चलाता रहेगा जब तक वह पूरी तरह थक थका न जायेगा। उसके बाद डूबकर मर जाने का उसने निश्चय किया।

इतने में प्रदीप ने एक आश्चर्यजनक बात देखी। कोई नवयुवक नदी में बहा आ रहा था। उसे शायद तैरना न आता था। जब कभी सिर ऊपर उठता, तो वह मुख से पानी पीता और फिर डूब जाता।

प्रदीप तुरत नदी में कूदा और उस नवयुवक की ओर जोर से तैरता हुआ गया। प्रदीप का शरीर दीखते ही, उस युवक ने उसको जोर से पकड़ लिया और वह बेहोश हो गया। बाढ़वाली नदी में जब प्रदीप एक तरफ़ से दूसरी तरफ़ गया तो वह बहुत थक गया। यही नहीं वह नवयुवक उसके गले में पत्थर की तरह पड़ा था। यद्यपि दूसरा किनारा पास ही था, पर प्रदीप के लिए वहाँ तक पहुँचना बड़ा कठिन हो रहा था।

उसी समय—दूसरे किनारे पर कुछ लोग भागे-भागे आ रहे थे। उन्होंने प्रदीप और दूसरे नवयुवक को पार लगाया। फिर वे "छोटे मालिक, छोटे मालिक" पुकारते उसकी सेवा शुश्रुषा में लग गये। प्रदीप को किसी ने न पूछा।

आत्महत्या करने की इच्छा प्रदीप के मन में कहीं दब-दबा गई। उसे जीवन के प्रति फिर आसक्ति-सी हो गई। वह गीले कपड़े पहिने ही एक कोस की दूरी

पर विरूपा नगर में पहुँचा। वह दिन-भर नगर की गलियों में फिरता रहा। सायंकाल के समय अम्बिकालय में गया। वहाँ एक स्तम्भ के सहारे बैठकर आलय में आने जानेवालों को देखने लगा।

थोड़ी देर में वहाँ एक कुटुम्ब आया। मनुष्यों को, उनके पहिने कपड़ों को, उनके नौकर चाकरों को और नौकर, जो सामान उठाकर लाये थे उसको दो उसने अनुमान किया कि वे किसी बड़े घराने के थे। उस कुटुम्ब में अधेड़ उम्र के पति पत्नी, सोलह सत्रह साल की उनकी लड़की और तीन चार छोटे छोटे बच्चे थे। उनके साथ नौकर नौकरानियाँ थालों में नारियल, केले, फूल, सिन्दूर, कपूर आदि लेकर आये थे।

वे सब आलय में गये। तब नौकरों ने मालिक से कहा—"हमारे छोटे मालिक को जिसने सवेरे बचाया था, ठीक उसी की तरह एक आदमी बाहर मण्डप में बैठा है।

मालिक उसके साथ बाहर गया। प्रदीप के पास आकर उसने कहा—"बेटा! तुम्हारा नाम क्या है? तुम्हारा कौन-सा गाँव है?" उसकी बातचीत से मालूम

हो गया कि प्रदीप ने ही उस महाशय के लड़के को बचाया था।

"आज हमारा लड़का मौत से बच गया। इसलिए तुम जान ही सकते हो कि हम कितने सन्तुष्ट हैं। आनन्दित हैं। इसलिए देवी अम्बिका की पूजा करने हम मन्दिर में आये हैं। तुम भी हमारे साथ आओ। हमारा लड़का तुम्हारी राह देख रहा है। उसे यह भय है कि वह तो बच गया, पर तुम्हें कहीं नदी ने निगल लिया हो।" उस महाशय ने कहा।

वह प्रदीप को अपने घर तो ले ही गया। उसके साथ अपनी लड़की का विवाह भी उसेने किया। उसे अपने घर में रख लिया। इस तरह प्रदीप के सपने सच्चे हो गये।

बेताल ने कहानी सुनाकर पूछा—"राजा, मुझे एक सन्देह है। प्रदीप ने उस युवक की रक्षा करने के बाद आत्म हत्या करने का प्रयत्न क्यों छोड़ दिया? उसके जीवन पर फिर आसक्त होने का क्या कारण था? अगर इन प्रश्नों का जान बूझकर उत्तर न दिया तो तुम्हारा सिर फूट जायेगा।"

विक्रमार्क ने कहा—"परोपकार के कारण व्यक्ति और समाज में बान्धव्य पनपता है। क्योंकि उसको दूसरों का उपकार करने का मौका न मिल रहा था, इसलिए ही तो प्रदीप में जीवन के बारे में कल्पना करने की शक्ति भी न रह गई थी। जब उसने एक को मृत्यु से बचाया तभी उसमें कल्पना करने की शक्ति वापिस आ गई।"

इस प्रकार राजा का मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य हो गया और पेड़ पर चढ़ गया। (कल्पित)

अहल्याबाई

महाराष्ट्र के पाथर्डी ग्राम में आनन्दराव शिन्दे नाम का एक किसान रहा करता था। उसके बहुत दिन सन्तान न हुई। उसने पत्नी के साथ कितने ही मन्दिरों के चक्कर लगाये, कितने ही देवी देवताओं की मनौति की, कितने ही तीर्थ घूमे पर उनकी सन्तान की इच्छा पूरी न हुई।

एक दिन पाथर्डी गाँव में एक स्वामी आया। शिन्दे दम्पति ने उसको अपनी कहानी सुनाई। "कोल्हापुर की जगदम्बा देवी की यदि पूजा की गई, तो तुम्हारी इच्छा पूरी हो सकती है" उसने बताया। उसके कथनानुसार, उस दम्पति ने एक वर्ष तक श्रद्धा और भक्ति के साथ उस देवी की आराधना की।

एक दिन रात को देवी आनन्दराव को स्वप्न में दिखाई दी—"तुम पति-पत्नी की भक्ति देखकर मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। मैं स्वयं तुम्हारे घर पैदा होने जा रही हूँ।" उसने कहा। उस दिन आनन्दराव की पत्नी ने भी एक सपना देखा। जिसमें एक स्त्री ने उसकी गोद में एक बच्चा रखा और उसके मस्तक पर टीका लगाया। फिर वह अदृश्य हो गई।

शिन्दे दम्पत्ति आनन्दित हो अपने ग्राम वापिस चले गये। फिर थोड़े समय बाद—यानि १७२५ ईसवी में, उनके यहाँ अहल्याबाई का जन्म हुआ। जिस किसी ने उसकी जन्मपत्री देखी, उसने कहा कि वह राजा की पत्नी होगी और काफी समय तक रानी होकर शासन करेगी।

अहल्या ने अपना बचपन बड़े सुख चैन से काटा। उसे पढ़ने का शौक था। रामायण और महाभारत पर उसको गर्व था।

वह विशेष सुन्दर तो नहीं समझी जाती थी, पर अपने आचार व्यवहार, मान-मर्यादा से आकर्षित करने की उसमें शक्ति थी।

नौ वर्ष पूरे होते ही अहल्या के विवाह के लिए प्रयत्न होने लगे। यह सोच कि उसकी जन्मपत्री में बात ठीक निकले, उसके पिता ने दुनियाँ-भर के राजवंशों के विषय में पूछ-ताछ की, ताकि अहल्या के योग्य कोई वर मिल सके—पर कहीं कोई योग्य नहीं दिखाई दिया। आखिर उन्होंने सोचा कि जो जन्मपत्री में लिखा था वह उनके प्रयत्न के बगैर भी होकर रहेगा।

कुछ समय बीत गया। रघुनाथराव, दादा पेशवा, मल्हाराव होलकर ने उत्तर देश की विजय के बाद अपनी सेनाओं के साथ वापिस आते हुए पाथड़ी ग्राम में पड़ाव किया। युद्ध के समय महाराष्ट्र के योद्धा यथाविधि मारुती की पूजा करते हैं। शिन्दे के घर के सामने मारुती का मन्दिर था। जब मल्हाराव उस मन्दिर में आया, तब अहल्याबाई भी वहाँ थी। उसकी महारानी के योग्य शान देखकर मल्हाराव ही नहीं, उसके कर्मचारी भी प्रभावित हुए। मल्हाराव ने उस लड़की के बारे में जानना चाहा। उस समय अहल्याबाई के गुरु ने, जो वहाँ था, उस लड़की के जन्म आदि के बारे में सब कुछ बताया। वह सुनकर मल्हाराव ने कहा कि यह लड़की, मेरे लड़के खाण्डेराव की पत्नी होने लायक है।

तुरत विवाह के बारे में बातचीत हुई। अगले मास खाण्डेराव और अहल्याबाई का वैभव के साथ विवाह सम्पन्न हुआ।

यद्यपि वह यकायक राजमहल में आ गई थी, पर उसका व्यवहार दूसरों के लिए भी आदर्श था। ससुर गुसैल थे। सास भी राजसिक प्रकृति की थी, अहल्या आदर्श

स्त्रियों के पद चिन्हों पर चलती गई। कभी उसने अनधिकार चेष्ठा न की। निष्कपट उसका व्यवहार रहा। उसने सबको प्रभावित किया। ससुर माल्हाराव ने उसको शासन, राजनीति आदि विषयों के बारे में जानने दिया। जब कभी वह युद्ध के लिए दूर देश जाता, तो शासन का भार उस पर छोड़कर जाता। वह अपना कर्तव्य करती और खर्च में बचत भी करती।

१७५४ में भीलों ने विद्रोह किया। खाण्डेराव उनके विद्रोह का दमन के लिए सेना के साथ गया, और युद्ध में मारा गया। अभी अहल्या की बीस वर्ष की भी उम्र न थी कि वह विधवा हो गई। तभी ही उसके मालीराव नाम का लड़का और मच्छाबाई नाम की लड़की थी।

अहल्या ने अपने पति के साथ सति हो जाना चाहा। परन्तु उसके ससुर मल्हाराव ने उसको यह करने न दिया। उसने अहल्या से कहा—"बेटी, तुम्हारे सिवाय मेरी और कोई सन्तान नहीं है। अगर तुम भी चली गई, तो इस बुढ़ापे में मेरा और कोई न रहेगा। राज्य में अराजकता फैल जायेगी। इसलिए जैसे भी हो, तुम अपने दुःख को निगल जाओ, और राज्य का परिपालन करो।"

मल्हाराव चाहता था कि विस्तृत महाराष्ट्र साम्राज्य सम्पूर्ण भारत में स्थापित हो। इस प्रयत्न में वह सफल होता भी दिखाई दिया। उत्तर भारत, थोड़ा थोड़ा करके उसके आधीन हो रहा था। दिल्ली भी उसके आधीन हो गई। पर इस बीच वह मर गया।

अहल्या का लड़का, मालीराव इन्दौर की गद्दी पर बैठा। परन्तु वह राजा होने

योग्य न था। क्रूर भी था। गद्दी पर बैठे नौ महीने हुए थे कि वह मर गया। कोई ऐसा न था, जो उसकी मृत्यु पर खुश न हुआ हो। अब यह समस्या आई कि गद्दी पर कौन बैठे। "न्याय और चातुर्य से मैं ही प्रजा का पालन करूँगी।" अहल्याबाई ने प्रकट किया।

राजकर्मचारियों ने सोचा कि यदि स्त्री गद्दी पर बैठी तो वे मनमानी कर सकेंगे। परन्तु अहल्या मनुष्यों को पहिचानने समझने में बहुत चतुर थी। जो उसकी नित प्रशंसा किया करते थे, उनके प्रति पक्षपात न करके, उन्हीं लोगों को उसने कर्मचारी नियुक्त किया, जो समर्थ थे। उन लोगों को ही अपना मन्त्री बनाया, जो प्रजा के हितैषी थे, स्वार्थी प्रजा पीड़कों को नहीं।

षड़यन्त्रकारियों की चाल न चल सकी। वे क्रुद्ध हुए। अहल्याबाई के पतन के लिए वे प्रयत्न करने लगे। इन षड़यन्त्रकारियों का मुखिया गंगाधर जसवन्त था। वह राजपुरोहित था। उसने रानी से कहा—"आपने अपने ऊपर बहुत भार ले लिया है। यह अबलाओं के लिए ठीक नहीं। मेरी बात मानिये। अपने वंश के किसी

बालक को गद्दी पर बिठाइये। उसकी तरफ़ से राज्य का परिपालन करने के लिए किसी को प्रतिनिधि नियुक्त कीजिये और आप पूजा-पाठ आदि में विधवाओं की तरह समय काटिये।"

"मैं राजपत्नी और राजमाता हूँ। मेरे होते किसी को मुझ से ऊँचे पद पर बिठाना मैं कभी नहीं मानूँगी। धर्म के बारे में आप जो सलाह देंगे उसका पालन करने के लिए मैं तैयार हूँ। परन्तु राजनीति में आप कभी हस्तक्षेप न कीजिये।" अहल्या ने राजपुरोहित से साफ़ साफ़ कहा।

गंगाधर जसवन्त को ये बातें चुभीं। पेशवा माधवराव के चाचा राघोबा को इस पुरोहित ने लिखा—"हमारे राज्य को आप आकर स्वाधीन कर लीजिये। यहाँ एक स्त्री राज्य कर रही है।

राघोबा शक्तिवान था और लोभी भी। उसने अहल्याबाई के नौकरों में से कुछ को अपनी ओर किया। उसने उनसे अहल्याबाई को यह कहलाया—"हमारे राज्य को एक तरफ़ राजपूत, और दूसरी ओर अंग्रेज हड़पने की ताक में हैं। उनसे युद्ध करना एक स्त्री के लिए सम्भव नहीं है। इसलिए

सिंहासन पर किसी अपने वंशज को और शासन आदि के लिए एक राजप्रतिनिधि को नियुक्त करना आवश्यक है।"

अहल्याबाई ने उन लोगों से कहा—"मैं तुम्हारे षड़यन्त्र के बारे में जानती हूँ। तुम्हें इसके लिए दण्ड मिलेगा। तुम्हें अपनी रानी के प्रति जैसा व्यवहार करना चाहिये वैसा करो। मैं तुम्हारी धमकियों से डरनेवाली नहीं हूँ। मैं तुम्हारी चाल न चलने दूँगी।

यह सुन राघोबा आगबबूला हो उठा—"अरे, इस स्त्री को इतना अहंकार! क्या यह यह नहीं जानती कि इसका ससुर हमारा सामन्त था? मैं इसको सबक सिखाऊँगा।" उसने कहा।

परन्तु इस बीच अहल्याबाई ने अपने कर्मचारियों में से षड़यन्त्रकारियों को होशियारी से चुन चुनकर जेल में डलवा दिया। इनमें राघोबा भी था।

कुछ दिनों बाद अहल्या ने राघोबा को छुड़वा दिया, और उसको इन्दौर में अतिथि के रूप में रहने दिया। राघोबा ने स्वयं देखा कि वह किस चतुरता से राज्य का शासन करती थी, पर उसको यह अपमान बींधता रहा कि उसको कुछ दिन कैद में रहना पड़ा था।

गंगाधर जसवन्त ने रानी से क्षमा माँगी। रानी ने उसको क्षमा भी कर दिया। वह पहिले की तरह राज पुरोहित के पद पर काम करता रहा, और षड़यन्त्रकारियों से भी उसने राजभक्ति की शपथ करवाई, और उसको भी छुड़वा दिया।

कहा जाता है राघोबा अपना अपमान न भूल सका। उसने राजपूतों को इन्दौर पर आक्रमण करने के लिये उकसाया। परन्तु अहल्याबाई न डरी। उसने, जो

कोई उसकी सहायता कर सकते थे, उनका संगठन किया। भोंसले, शिन्धिया और बरोड़ा के शासकों से सहायता मागी। वे अपनी सेनाओं के साथ आये।

अहल्याबाई की सेनाओं का सेनापति तुकोजी था। यह यद्यपि उच्च कुल का न था,—पर युद्ध में बड़ा चतुर था। युद्ध में उसने राजपूतों को हराया और मैदान से भगा दिया।

राघोबा का क्रोध तब भी न गया। कुछ समय बाद उसने अहल्याबाई से पैसा भेजने के लिये कहा—"मेरे पास पैसा नहीं है। आपके खज़ाने में पैसा भरा पड़ा है। अगर आपने थोड़ा दे भी दिया, तो कोई कमी न होगी—और मेरी भी ज़रूरत पूरी होगी—" "जो कुछ मेरे खज़ाने में है, वह सब कृष्ण की सेवा के लिए है। उस भगवान के नाम, पुण्य कार्यों को करने के सिवाय वह धन किसी और काम पर खर्च नहीं किया जा सकता। आप ब्राह्मण हैं। अगर बहुत आवश्यकता है, तो कुछ दान दे सकती हूँ। आप ले भी सकते हैं।" अहल्याबाई ने जवाब भेजा।

"दान देगी! जो कुछ मुझे चाहिए मैं स्वयं ले लूँगा। देखें कौन रोकता है!" कहकर राघोबा ने एक सेना जमा की और इन्दौर पर आक्रमण करने आया। अहल्याबाई स्वयं कवच धारण करके उसका मुकाबला करने गई। उसके साथ पाँच सौ दासियाँ थीं। एक भी आदमी न था।

राघोबा को यह बड़ा विचित्र-सा लगा। उसने अहल्याबाई से पूछा—"सेना कहाँ है?"

"हम जो पेशवाओं के अनादि काल से सामन्त रहे हैं, कैसे उनके साथ युद्ध कर सकते हैं! जब तक मेरे शरीर में प्राण हैं, तब तक मैं खज़ाने से आपको फूटी कौड़ी भी न लेने दूँगी। मुझे मारकर मेरा धन लीजिये।" अहल्याबाई ने कहा।

राघोबा मूर्ख न था। वह शर्मिन्दा हुआ। सिर झुकाकर जिस रास्ते आया था, उस रास्ते चला गया।

केवल शासन-कुशलता व युद्ध चातुर्य के कारण अहल्याबाई को कीर्ति न मिली थी। रोजमर्रे के शासन में उसने इतनी बुद्धिमत्ता दिखाई कि दिन प्रति दिन उसकी प्रजा का ऐश्वर्य बढ़ता गया। जब वह गद्दी पर

बैठी थी तो ठग और डाकू स्वतन्त्र रूप से घूमा फिरा करते थे। अहल्याबाई ने घोषित किया कि जो वीर इनका दमन करेगा उसके साथ वह अपनी इकलौती लड़की का विवाह करेगी। जसवन्तराव नाम के युवक वीर ने यह कठिन काम करके दिखाया। उसका मच्छाबाई के साथ विवाह हुआ।

यद्यपि उसने बहुत सोच समझकर कर्मचारियों की नियुक्ति की थी, तो भी यदि उनपर कोई दोषारोपण करता तो वह स्वयं पूछ-ताछ करती। उसे यह कतई पसन्द न था कि कोई जनता को सताये।

एक बार बसिया नामक ग्राम में एक धनी मर गया। उसकी पत्नी को बहुत-सी धन सम्पत्ति मिली। उसने उस सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होने के लिए एक बच्चे को गोद लेना चाहा। परन्तु ग्रामाधिकारी ने कहा कि यह न किया जा सकता था। वह चाहता था कि उसकी सारी धन-सम्पत्ति राज्य के खजाने में जाये। यह जानते ही अहल्याबाई ने ग्रामाधिकारी को धमकाया और विधवा को गोद लेने का अधिकार दे दिया।

एक बार फिर ऐसा हुआ कि दो धनी और मर गये। उनकी पत्नियों को जीवन से वैराग्य हो गया। उन्होंने अहल्याबाई के पास जाकर कहा—"महारानी, हम अपने पतियों की सारी सम्पत्ति आपको देकर तीर्थयात्रा पर जाना चाहती हैं।"

"बहिनो, अगर हमारी जिम्मेवारियाँ इतनी आसानी से निभ जातीं तो कहना ही क्या? मेरे पास धन की कोई कमी नहीं है। तुम अपनी सम्पत्ति अपने पास रखो। अपना धन पुण्य कार्यों में लगाओ।" अहल्याबाई ने कहा। उन्होंने उसकी सलाह के अनुसार ऐसी जगह तालाब खुदवाये जहाँ तालाब न थे, जहाँ कुँए न थे वहाँ कुँए खुदवाये। गरीबों के लिए भोजनालयों का प्रबन्ध किया।

अहल्याबाई निराडम्बर थी। व्यर्थ के आभूषणों को वह बिल्कुल न चाहती थी। अपने धन को शुभ कार्यों में लगाती। यह सोचकर कि जब धर्म के प्रति जनता की श्रद्धा बढ़ेगी देश की खुशहाली बढ़ेगी, उसने कई मन्दिर बनवाये। उसके बनवाये हुए मन्दिरों में से सब से प्रसिद्ध मन्दिर गया में स्थित विष्णुपादालय है।

अहल्याबाई सत्तर वर्ष जीवित रही। उसका जीवन सुखपूर्ण था। उसको एक ही कष्ट रहा, वह यह कि उसके जीते जी उसकी लड़की पति के साथ सती हो गई थी।

अहल्याबाई के बारे में ज्योतिषियों ने जो कुछ कहा था वह ठीक निकला। वह एक किसान के घर पैदा होकर राजा की पत्नी बनी। रानी बनकर उसने कई साल शासन किया। उसकी कीर्ति इतिहास में अमर है।

गलीवर की यात्रायें

लिलिपुट से आये हुए अभी दो महीने ही हुए थे कि मैं फिर एक जहाज़ पर सवार हुआ। उसका नाम था "एडवेन्चर"

हम सूरत के लिए निकले। कुछ दिन तो यात्रा ठीक तरह चलती रही। फिर यकायक तूफ़ान आ पड़ा।

तूफ़ान के बाद एक और दिक्कत आई। जहाज़ में पानी खतम हो गया। पर इतने में भूमि दिखाई दी।

हम बारह लोग एक नाव में सवार होकर किनारे पर गये। वह एक बड़ा द्वीप था। सब एक-एक रास्ते पानी खोजने के लिए निकल पड़े।

बहुत खोजने पर भी जब पानी न मिला, ऊबकर जब मैं जहाज़ की ओर चला, तो देखा कि साथ

"अरे ठहरो भी ज़रा हमारे लिये..." मैं चिल्लानेवाला ही था कि भयंकर दृश्य दिखाई

पहाड़-सा आदमी नाव को हटा रहा था। नाव में हमारे मित्र, सौभाग्यवश तब तक काफ़ी दूर जा चुके थे।

कहीं वह मुझे देख न ले, इस भय से मैं खेतों में घुसकर भागने लगा। वहाँ ऐसी फसल खड़ी थी, जो चालीस फीट ऊँची थी।

मेरा भी ऐसा दुर्भाग्य कि जिस खेत में मैं छुप जाना चाहता था, वहाँ कटाई चल रही थी। एक एक आदमी अस्सी-अस्सी फीट ऊँचा था।

उनके हँसियों से बचता-बचता, पीछे-पीछे भागा, परन्तु वे आदमी एक ही कदम में दस गज़ आगे बढ़ रहे थे।

जब जान गया कि भागने से कोई फ़ायदा न था, तो गला फाड़कर ज़ोर से चिल्लाया—
“[illegible]!”

शायद उसको, मेरे चिल्लाने के कारण मैं दीखा हूँगा। वह मजदूर मुझे पकड़कर अपने मालिक के पास ले गया।

मालिक ने मुझे उठाया—इस तरह देखा, जैसे मैं कोई कीड़ा हूँ। जितनी भाषायें मुझे आती थीं, मैं उन सब भाषाओं में चिल्लाया कि मैं आदमी हूँ।

शायद वह मुझे समझा नहीं, उसने मुझे धीमे से उतारा। मैंने आगे पीछे चलकर, उसे विश्वास दिलाया कि मैं भागूँगा नहीं।

जब बटुने में से निकालकर मैंने सोने की मुहरें देनी चाहीं, उसने छोटी अंगुली से छूकर उन्हें देखा और लेने से इनकार कर दिया।

उसने अपना हाथ नीचे रखा, अपना रुमाल बिछाया और उस पर मुझे बैठने के लिए कहा। हथेली

रुमाल में बाँधकर, वह मुझे अपने घर ले गया उसने मुझे अपनी पत्नी को दिखाया। वह इस

तीस फीट ऊँचे मेज़ के चारों ओर मालिक का परिवार भोजन के लिए बैठा। एक एक तश्तरी २४ फीट चौड़ी थी।

घर की मालकिन ने रोटी के टुकड़े दिये। जब मैं अपनी जेब से चाकू और छुरी निकालकर उन्हें काट-काटकर खाने लगा, तो वे हँसे।

यकायक मालिक के छोटे लड़के ने, मेरा बायाँ पैर पकड़कर, सिर के बल खड़ा करके, मुझे ६० फीट ऊँचे उठाया।

मालिक ने सहसा आकर मुझे बचाया। उसको दण्ड देना चाहा—परन्तु मैंने मना किया। उसे एक छोटी-सी चपत लगाकर उसने छोड़ दिया।

पिछवाड़े में कुछ गर्जन सुनाई दिया। देखा तो वह उनकी बिल्ली थी। वह हमारे बैल से तिगुनी

भोजन के बाद घर की मालकिन ने मुझे बिछौने पर सुलाकर, अपना रुमाल मुझ पर ढाँप दिया।

कछुवे की ठठरी

पाँच सौ साल पहिले सू चौ नगर में पश्चिमी द्वार के पास वेन्शी नाम का एक व्यक्ति रहा करता था। वह बड़ा अक़्लमन्द था। शतरंज, चित्रकला, नाट्यकला, संगीत, वाद्य वादन जो कुछ उसने सीखा, उसमें निपुण होकर उसने दिखाया। छुटपन में उसको किसी ज्योतिषी ने बताया कि वह बड़ा धनी होगा। इसलिए धन कमाने का प्रयत्न तो उसने किया नहीं और जो कुछ पास था, उसे भी मजे में खर्चने लगा।

जल्दी ही उसकी जमीन-जायदाद खतम होने को आई। उसके साथियों ने व्यापार में अपनी सम्पत्ति दुगनी तिगुनी कर ली। वेन ने भी व्यापार करने का प्रयत्न किया। पर जब जब उसने व्यापार किया, उसको नुक्सान हुआ। वह बड़ी होशियारी से वे वस्तुयें ही खरीदता, जिनकी अधिक माँग होती, जिनके दाम अधिक होनेवाले होते। परन्तु वे या तो भीग-भाग जातीं, नहीं तो जल जला जातीं। इस तरह उसका अपना पैसा तो जाता ही, उसके हिस्सेदारों का पैसा भी जाता। सब उसे अभागा समझने लगे। आखिर उसको मित्रों पर आधारित होकर जीना पड़ा।

उसे मालूम हुआ कि चालीस व्यापारी एक जहाज़ समुद्र पार व्यापार करने जा रहे थे। वेन ने उनसे जाकर कहा कि वे उसे भी साथ ले जायें। क्योंकि वेन बातें बनाने में तेज़ था इसलिए उन्होंने सोचा कि यदि वह साथ रहा तो रास्ता आराम से तय हो जायेगा। वे मान गये।

वेन देश विदेश देखना चाहता था, पर व्यापारियों के मुखिया चान्ग ने इस उद्देश्य से कि उससे भी व्यापार कराये और

इन्दु भटनागर

व्यापारियों से उसके लिए चन्दा देने को कहा। कई ने चन्दा न दिया। इसलिए दो तोला चान्दी ही इकट्ठी की जा सकी। चान्ग ने उसे वेन को देते हुए कहा—"यह माल खरीदने के लिए तो यूँ ही काफ़ी न होगा। इसलिए कुछ फल वगैरह खरीद लो ताकि रास्ते में खाने पीने के लिए कुछ साथ रहे।" बन्दरगाह में सन्तरे बिक रहे थे। वेन ने उस चान्दी से जितने सन्तरे टोकरों में खरीदे जा सकते थे, खरीद लिये। उन्हें देख बाकी व्यापारियों ने उसका परिहास किया।

कुछ दिनों बाद जहाज़ एक देश में पहुँचा। वहाँ के एक बन्दरगाह में जहाज़ ने लंगर डाला। सब व्यापारी उस देश से परिचित थे। चीन की वस्तुयें उस देश में नौ दस गुने अधिक दाम पर बिकती थीं। इसलिए जान की भी परवाह न करके चीन के व्यापारी वहाँ व्यापार करने आते थे। जब सब व्यापारी अपना माल लेकर उतर गये तो वेन को भी सन्तरों के टोकरे याद आये। क्योंकि सब उन्हें देखकर हँसे थे, इसलिए उसने सफ़र में उनकी ओर देखा तक न था। यह देखने के लिए कि कहीं वे सड़-सड़ा तो नहीं गये हैं, उसने टोकरे ऊपर मंगवाये। उनमें से सब फल निकालकर, जहाज़ के ऊपरले भाग में फैलाकर रखे। फल अच्छे ही मालूम दिये। फिर भी स्वाद जानने के लिए एक सन्तरा छीलकर कुछ फाँकें उसने मुख में डालीं।

तब तक जो लोग बन्दरगाह में थे, उन चमकते लाल लाल फलों को आश्चर्य से देख रहे थे। उन्हें अब मालूम हुआ कि उन्हें खाया जाता था। उनमें से एक ने भारी रुपया वेन को देकर, एक सन्तरा देने के लिए अंगुली से इशारा किया।

उसने एक सन्तरा ले लिया। वेन की तरह उसको छीलकर खाने की अपेक्षा उसने सारा फल ही मुख में रख लिया। उसका रस पी गया और बीज वगैरह भी निगल गया। उसे उसका स्वाद बहुत अच्छा लगा। वह वेन को दस रुपये और देकर दस फल ले गया। उसके बाद तो सन्तरे खरीदने के लिए जमघट-सा लग गया। वेन ने, जब आधे फल बिक गये, तो एक एक फल के लिए दो दो रुपये वसूल किये। इतने में वह आदमी आया जिसने पहिला फल खरीदा था। वह सारे फल मय टोकरों के खरीद कर ले गया।

व्यापारी वापिस आये। वेन के व्यापार के बारे में सुनकर उन्होंने उससे कहा—"बहुत किस्मतवाले हो। यहाँ का माल अगर खरीद कर चीन ले गये, तो वहाँ बहुत फायदे पर उसको बेच सकोगे।" परन्तु वेन ने सोचा, जो सौभाग्य उसे प्राप्त था, वह मिल ही गया था, वह, जितना कमाया था, उसीसे तसल्ली कर बैठा।

व्यापारियों को अपना माल बेचने और खरीदने के लिए पन्द्रह दिन लगे। फिर वे जहाज़ पर सवार होकर निकले। कुछ दिनों बाद, भयंकर तूफ़ान आया। जहाज़ बहने लगा, आखिर वह एक निर्जन द्वीप में जाकर लगा। तूफ़ान के खतम होने तक उन्होंने वहीं लंगर डाला।

वेन द्वीप को देखने निकला। "निर्जन द्वीप में देखने के लिए क्या रखा है!" सब ने उससे कहा, समझाया, पर वेन अकेला ही चल दिया। द्वीप के बीच में एक टीला दिखाई दिया। बेलों की सहायता से वह उस टीले पर चढ़ा। वहाँ से उसने जो देखा, तो चारों ओर समुद्र ही समुद्र था। इतने में पास ही उसको घास में

एक अजीब चीज़ दिखाई दी। पास जाकर देखा तो वहाँ एक कछुवे की ठठरी थी। परन्तु वह बहुत बड़ी थी। एक खाट जितनी बड़ी। क्या इतने बड़े कछुवे भी होते हैं! वेन ने अचरज किया। उतनी बड़ी कछुवे की ठठरी किसी ने न देखी होगी। अगर कहेगा भी कि उसने देखी थी, कोई विश्वास नहीं करेगा—अगर इसे अपने देश ले गया, और इसके पाये लगाये तो दो पलंगे बन सकती हैं। यह सोच वेन ने उस कछुवे की ठठरी से कपड़ा बाँधा और उसे बन्दरगाह तक खींचकर ले गया। उसे देखकर सब व्यापारियों को आश्चर्य हुआ। कई ने कहा उसे ले जाना बेकार था। कई ने बताया कि वह औषधी के काम में आ सकता था। "आप सब विदेशी माल ला रहे हैं न! यह मेरा विदेशी माल है। मगर फर्क यह है कि बिना दमड़ी के खर्च के यह मुझे मिला है।" वेन ने कहा।

तूफ़ान जरा कम हुआ। जहाज़ चलने लगा। ज्योंही जहाज़ चीन के तट पर पहुँचा, व्यापारियों के दलालों ने आकर जहाज़ के व्यापारियों को अपने मालिकों की
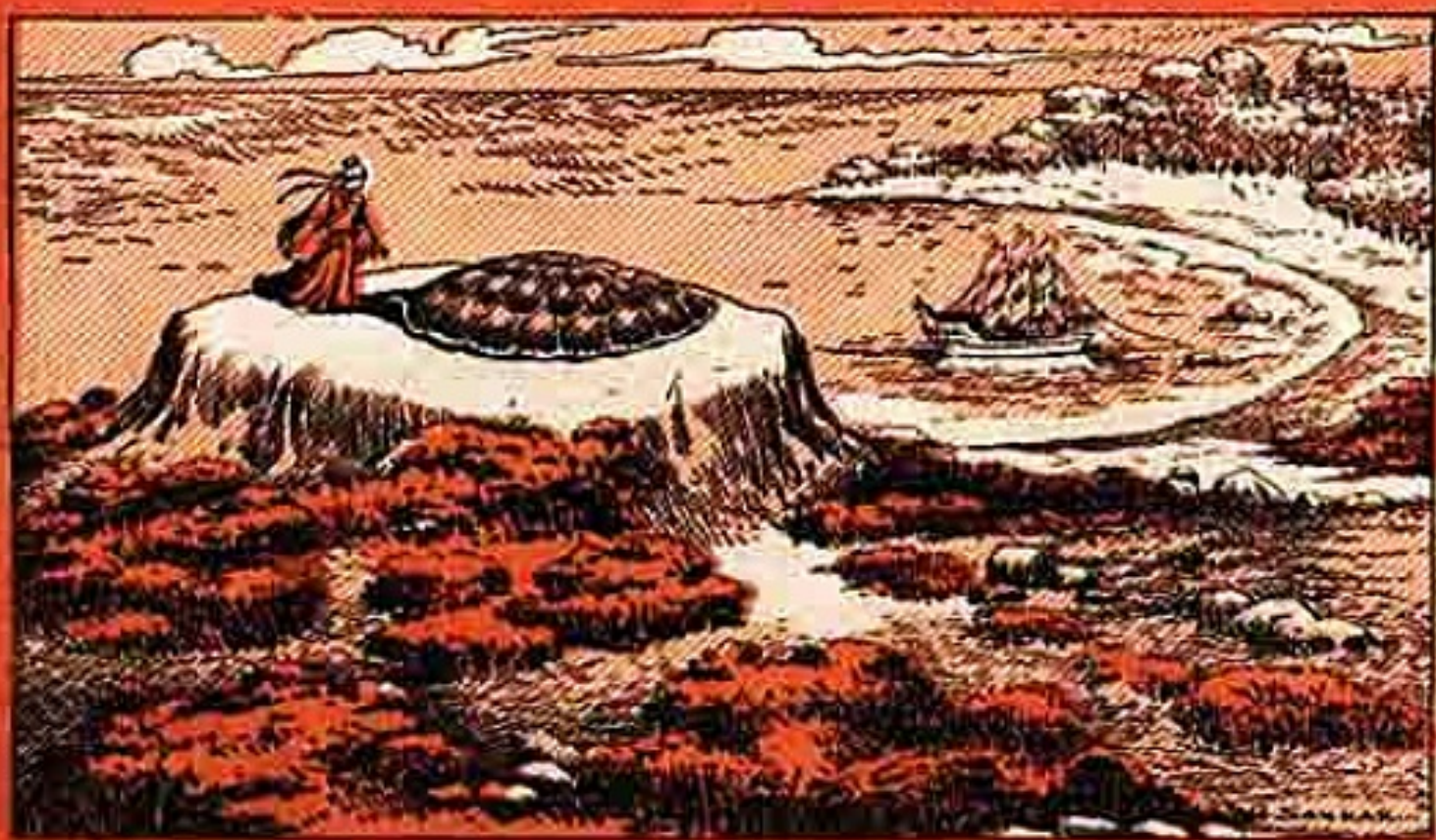
ओर से निमन्त्रण दिया। वेन और उसके दलाल, एक ईरानी व्यापारी को देखने गये। उसका नाम अबू हसन था। उसने अपने अतिथि के लिए बड़ी दावत दी।

इस तरह की दावतों में यह रिवाज था, जो सब से अधिक कीमती चीज़ें लाता था, उसको ऊँचा आसन दिया जाता था, जो सब से कम कीमती चीज़ लाता था, उसको पंक्ति में अन्तिम बिठाया जाता था। आसनों का निर्णय करने के लिए ईरानी व्यापारी ने सब के माल की सूची गौर से देखी। वेन के पास कोई भी सूची न थी। इसलिए उसको पंक्ति में आखिर बिठाया गया। पर न उसे खाने की इच्छा हुई, न पीने की ही। अगले दिन ईरानी व्यापारी जहाज़ में माल देखने आया। ज्योंही वह जहाज़ पर चढ़ा, उसके ऊपरले भाग पर कछुवे की ठठरी देखकर चकित हो उठा—"यह बहुमूल्य वस्तु किसकी है? क्या इसे नहीं बेचोगे।" उसने पूछा। बाकी व्यापारियों ने कहा कि वह वस्तु वेन की थी।

ईरानी व्यापारी के चेहरे पर दुःख और कोप दिखाई दिया। "इतने दिनों

से तुम मेरे साथ व्यापार कर रहे हो, पर तुमने इस भले आदमी का नाम नहीं बताया, और उसको दावत में सब से अन्त में बैठने दिया। पहिले मुझे उनसे क्षमा माँगनी होगी, आपके माल के बारे में बाद में बताऊँगा।" वह बेन को साथ लेकर किनारे पर गया। अबू हसन, बेन को अपने दुकान में बिठाकर आया और फिर औरों को ले गया। उसने सब के सामने पूछा—"क्या उस कछुये की ठठरी बेचोगे?"

बेन मूर्ख नहीं था। उसने कहा—"यदि अच्छा दाम मिला तो बेच दूँगा।"

"तो बताओ कि कितना माँगते हो? मैं यूँ ही भाव सौदा करनेवाला नहीं हूँ।" अबू हसन ने कहा।

बेन ने चान्ग से सलाह मशवरा किया। उन दोनों ने कानों में कुछ कहा।

आखिर चान्ग ने हँसते हँसते कहा—"वह दस हज़ार माँगने की सोच रहा है।"

"तो यानि वे बेचना नहीं चाहते हैं।" हसन ने कहा।

व्यापारी जान गये कि कछुवे का कंकाल बहुत कीमती था। चान्ग ने बिना कुछ छुपाये, बेन की सारी कहानी सुनाई, और हसन से कहा कि जितना वह देना चाहे वह स्वयं ही निर्णय करे। हसन ने पचास हज़ार तोला चान्दी देकर कछुवे के कंकाल को खरीद लिया। वह भी कम दाम था। उस कछुवे के कंकाल में, कहते हैं, बहुमूल्य मोतियाँ होती हैं, जो कभी कभी अंगुली जितनी बड़ी भी होती हैं। कुछ भी हो बेन के बुरे दिन लद गये। उसने शादी कर ली। वह बड़ा व्यापारी हो गया, उसने आराम से जिन्दगी काटी।

फिर पूर्णिमा आई। बाबा आराम कुर्सी पर खिली चान्दनी में बैठे हुए थे। बच्चे उनके चारों ओर बैठे थे। बाबा मन में कुछ सोचते सोचते हँस पड़े। फिर उन्होंने यह श्लोक सुनाया :

"मनसा बध्यते जीवो,
मनसैव विमुच्यते—
देवदासो गतो बन्धं
वेश्यादासो विमोचितः।"

"इसका अर्थ क्या है बाबा?" बच्चों ने पूछा।

बाबा ने तुरत जवाब न दिया। उसने सुंघनी निकाली। नाक में सुंघनी डालकर सूँ सूँ करते हुए पूछा—"यही न पूछ रहे हो कि इस श्लोक का अर्थ क्या है? बताता हूँ, सुनो। जीव मन के कारण बंधा हुआ होता है! उस मन के कारण ही वह मोक्ष भी प्राप्त करता है। कभी देवदास नामवाला नरक गया और वेश्यादास मोक्ष पा गया।"

"बाबा, देवदास कौन है बाबा, वेश्यादास को क्यों मोक्ष मिल गया बाबा? यह कहानी क्या है बाबा?" बच्चों ने कई प्रश्न किये।

"तो यह कहानी सुनाने के लिए कहते हो सुनाता हूँ, सुनो।" बाबा ने कहा।

अवन्ती नाम का एक नगर था। उस नगर में एक ही आयु के दो ब्राह्मण नवयुवक थे। वे दोनों अनन्य मित्र थे। परन्तु उन दोनों के व्यवहार में बहुत अन्तर था। पूछोगे कि वह अन्तर क्या था? एक हमेशा भक्ति में डूबा रहता। नीतिवान था। हमेशा पूजा पाठ किया

करता। शाम को भजन करता। उसका व्यवहार देख सब उसको देवदास कहा करते थे और दूसरा हमेशा वेश्याओं के घर जाता। भोग विलास में समय बिताता। इसलिए लोगों ने उसका नाम वेश्यादास रख दिया।

हाँ तो यह हुआ। जब कि दोनों ऊपर से ऐसे थे तो यह क्यों नहीं पूछते कि इनके मन कैसे थे? देवदास हमेशा अपने मन में सोचा करता, "वहाँ देखो, ये वेश्यादास कितने मजे कर रहा है, मुझे तो एक भी सुख प्राप्त नहीं है और वेश्यादास सोचा करता कि उसका मित्र उत्तम जीवन िता रहा है उसे अवश्य मोक्ष मिलेगा।"

इस तरह वे कुछ दिन जीवित रहकर मर गये। तब जानते हो क्या हुआ? यम के सेवक देवदास को नरक ले गये, विष्णु के सेवक आकर वेश्यादास को मोक्ष ले गये।

"यह भी क्या अन्याय है? उस वेश्यादास को मोक्ष और मुझे नरक?" देवदास ने कहा।

"क्या करें? तेरा मन हमेशा वेश्याओं पर लगा रहता और वह वेश्यादास हमेशा मोक्ष के बारे में सोचता रहता। मुख्य है आत्मशुद्धि, न कि कार्य।" यम के सेवकों ने जवाब दिया।

इसीलिए बड़ों ने कहा है :

"न काष्ठ विद्यते देवो,
न पाषाणे नमृण्मये,
भावेतु विद्यते देव
स्तस्मात्द्भावोही कारणम्।"

[देव काठ में, पत्थर में या मिट्टी में नहीं है। हमारी बुद्धि में है, भावनाओं में है। इसलिए भावना ही मुख्य कारण है।]

साँची का स्तूप

भूपाल से झाँसी जानेवाले रेल मार्ग में भूपाल से तीस मील की दूरी पर साँची आता है। साँची बौद्ध कला के अवशेषों के लिए प्रसिद्ध है। कहा जाता है, इतने प्राचीन स्तूप हमारे देश में और कहीं नहीं हैं। बुद्ध के प्रधान शिष्य सारिपुत्त और मोगल्ला की अस्थियों को एक स्तूप में रखा गया है। ब्रिटिश शासकों ने उसको बहुत समय तक लंडन म्यूजियम में रखा। बहुत समय बाद उनको १९४९ में उन्होंने वापिस कर दिया। सांची का महास्तूप प्रसिद्ध है। इसका व्यास लगभग १२० फीट है। ऊँचाई ५४ फीट है। इसको रेतीले पत्थरों से बनाया गया है। इसके चारों ओर पत्थरों से चिना गया मार्ग है। उसके चारों ओर पत्थरों से बना प्राकार भी है। इस प्राकार में चार द्वार हैं। एक एक द्वार की ऊँचाई लगभग साढ़े २८ फीट है। इन द्वारों पर जातक कथाएँ विस्तृत रूप से चित्रित हैं। दक्षिण द्वार के पास अशोक के शिलालेख का एक खण्ड है।

२५० ई. पू. में अशोक ने साँची स्तूप को बनवाया था। यहाँ की शिल्पकला की विदेशियों ने भूरि भूरि प्रशंसा की है।
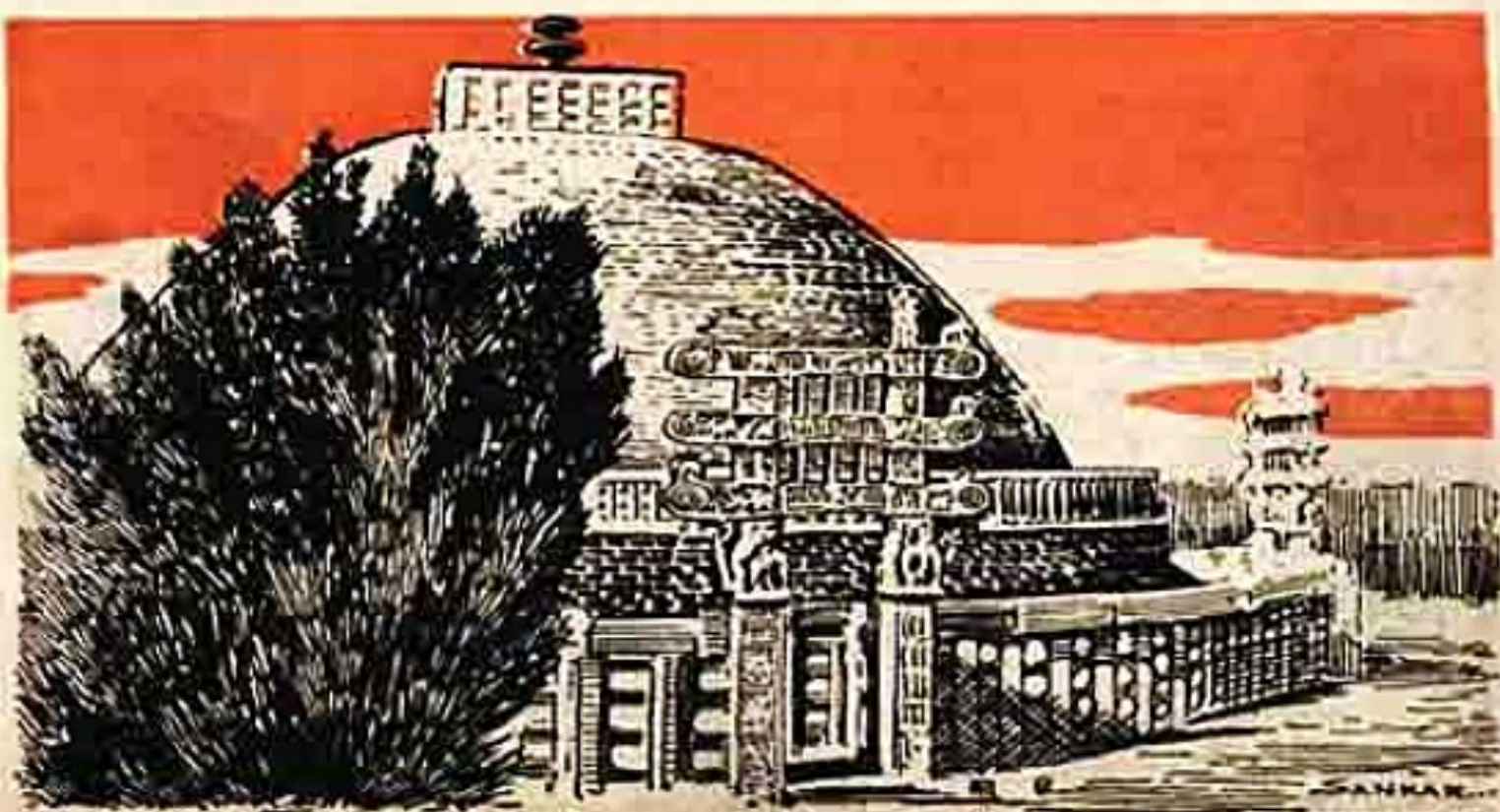
प्रसिद्ध ऐतिहासिक प्रदेश :

" देवगढ़ "

[दिवाकर श्रीवास्तव, पाटनी, धर्मशाला के पास. छिन्दवाड़ा (म. प्र.)]

मध्यप्रदेश में छिन्दवाड़ा जिले के अंतर्गत देवगढ़ एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान है। यह छिन्दवाड़ा से २० मील दूर स्थित है।

सतपड़ा की सुरम्य पहाड़ियों में स्थित यह प्रदेश वर्षों पूर्व गोंड राजाओं का राज्य था। मुसलमानोंने गोंड राजाओं को हराकर यह प्रदेश अपने हाथ लिया; पश्चात् यह अंग्रेजों के हाथ लगा, अब यह पुरातत्व विभाग के अधीन है।

देवगढ़ अब केवल एक छोटा सा ग्राम है। यहाँ से लगभग २ मील दूर घने जंगल में, एक ऊंची पहाड़ी पर, खाइयों से घिरा, ६ फर्लांग के घेरे में 'देवगढ़ क़िला' अब भी ध्वस्त अवस्था में सुरक्षित है। प्रतिवर्ष सैकड़ों व्यक्ति इस प्रदेश में भ्रमण हेतु आते हैं। किला एक मजबूत दीवाल से चारों ओर से घिरा हुआ है, चारों ओर बुर्ज़ बने हुये हैं जिनपर तोपें आदि रखकर दुश्मन पर वार किया जाता था। मस्ज़िद, नगारखाना, हाथीखाना, गंडी का मन्दिर और किले में तालाब—अभी भी सुरक्षित हैं। इन्हें देखने से ऐसा प्रतीत होता है मानों कुछ माह पहिले की बने हों। ताल की ऐसी विशेषता है कि वह ऊंचाई पर होने पर भी पानी से भरा हुआ है, और मजबूत है। किले पर घूमने से आस-पास की घाटियों का मनोहर दृश्य हरियाली लिये हुये दिखाई देता है। संध्याकालीन सूर्यास्त की अपूर्व छटा, रवि की किरणों को समेटते हुये देखते ही बनता है।

वेश्यामहल, मन्दिर और वेश्यामहल के समीप स्थित तालाब देवगढ़ प्रदेश की ऐतिहासिक यादगारें हैं। कहते हैं राजा किले के गुप्त मार्ग से यहाँ आते थे। तालाब तो अभी भी बना है किन्तु पानी नाममात्र को है। इस प्रदेश में आने से हमें प्राचीनकला और अनेक ऐतिहासिक स्थानों और दृश्यों को देखने का अवसर प्राप्त होता है।

क्या खोज रहे हो ?
कुछ नहीं, माँ !
वह नीची पंक्ति के दूसरे डब्बे में है।

तो डाक्टर साहब, आप कहते हैं कि इस ऐनक को पहिनकर मैं पढ़ सकूँगा। यह खूब है, मैं तो इससे पहिले पढ़ना ही न जानता था।

लाम लाम, क्या तुम लिखना जानते हो !
लिखता तो अच्छा हूं, पर पढ़ना नहीं आता।

जानते हो, क्या होता है, जब बच्चे झूठ बोलते हैं !
हाँ, बिना टिकट के रेल में जा सकते हैं।

चित्रकार: एस. शंकरनारायण

✻ 'शिशु' ✻

[श्री. 'अशोक' बी. ए. - नागपूर - २]

[१]

फूलों सा कोमल होता है!
इसके सरल, सलोने मुख पर -
छाई रहती छटा निराली!
इसके अरुण कपोलों को लख -
शरमाती ऊषा की लाली॥
ठुमक ठुमककर जब चलता है -
तब मन में अति सुख होता है।
फूलों सा कोमल होता है॥

[२]

इसकी तुतली तुतली बोली -
मन में मिसरी भर देती है!
इसकी प्यारी प्यारी आँखें -
सबके मन को हर लेती हैं॥
मिट्टी में ही खेल - कूदकर -
हँसता कभी, कभी रोता है।
फूलों सा कोमल होता है॥

[३]

यह है जन्मभूमि की आशा -
माँ की आँखों का तारा है।
यह प्रकाश का पुंज दीप है -
जिससे सब जग उजियारा है॥
इसकी बाल - सुलभ - क्रीड़ा लख -
सारा जग सुध - बुध खोता है!
फूलों सा कोमल होता है॥

[४]

यही देश का सूत्रधार है -
इस पर सारी आशाएँ हैं।
राम, कृष्ण, अभिमन्यु यही है -
इस पर सब अभिलाषाएँ हैं॥
होगा भविष्य निर्माण इसी से -
यह जान हमें सुख होता है।
फूलों सा कोमल होता है॥

फ़ोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता

दिसम्बर १९६० :: **पारितोषिक १०)**

कृपया परिचयोक्तियाँ कार्ड पर ही भेजें।

ऊपर के फ़ोटो के लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए। परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्द की हों और परस्पर संबन्धित हों। परिचयोक्तियाँ पूरे नाम और पते के साथ कार्ड पर ही लिख कर निम्नलिखित पते पर ता. ७, अक्तूबर '६० के अन्दर भेजनी चाहिए।

फ़ोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता,
चन्दामामा प्रकाशन,
वडपलनी, मद्रास - २६.

अक्तूबर – प्रतियोगिता – फल

अक्तूबर के फ़ोटो के लिए निम्नलिखित परिचयोक्तियाँ चुनी गई हैं। इनके प्रेषक को १० रु. का पुरस्कार मिलेगा।

पहिला फ़ोटो : **दे दीदी, खाने को दे!**

दूसरा फ़ोटो : **भूख लगी है आने दे!!**

प्रेषक : **अनिरुद्ध श्रीवास्तव,**
नेतरहात पब्लिक स्कूल, प्रेमआश्रम पो. नेतरहात जि. रांची, (बिहार)

१. मुनेश्वरप्रसाद, बरहरवा, स. प., बिहार

क्या यह बात सत्य है कि मान्गू खान जब मरा उसके शव के सामने बीस हजार आदमी आये और उन सबको मार दिया गया?

"मार्कोपोलो की साहसिक यात्रायें" में तो यही लिखा है। यह असम्भव अवश्य नहीं है।

२. अखराये चारव, कोनानुडीयं

आप अपने पत्र में एडवर्टाइज़मेन्ट बहुत छापते हैं, आप क्यों नहीं एडवर्टाइज़मेन्ट कम करते और स्वास्थ्य सम्बन्धी बातें या कहानी प्रतियोगिता चलाते?

अगर एडवर्टाइज़मेन्ट न दिये गये तो "चन्दामामा" उस दाम पर न दिया जा सकेगा जिस दाम पर कि आज दिया जा जा रहा है।—वर्तमान सामग्री भी शायद कम करनी पड़ेगी फिर स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी या कहानी प्रतियोगिता कैसे दी जा सकेगी?

३. हरिकृष्णलाल आर्य, ए/८३६, जंगुपुरा बी, नई दिल्ली

क्या आप विचित्र पशु-पक्षियों के बारे में भी कुछ छापने की कृपा करेंगे?

हम इस विषय पर कई सचित्र लेख दे चुके हैं और समय-समय पर अवश्य देते रहेंगे।

४. रिनीता सरकार, C/o एस. सी. सरकार, २६ बंगले, टूंडेला, अमदारा

क्या "चन्दामामा" में चित्र देनेवाले शंकर तथा भारत के प्रसिद्ध योग्य चित्रकार शंकर एक ही हैं?

जी नहीं।

जब आप विशेषांक निकलते हैं तो उसमें विज्ञापन के पृष्ठों ही संख्या ही अधिक होती है, तथा मूल वस्तु हमेशा की तरह उतने ही पृष्ठों की होती हैं, इसमें हम पाठकों का क्या लाभ?

नहीं, "मूल वस्तु" भी अधिक दी जाती है, फिर हम विशेषांक के मूल्य में भी कम ही वृद्धि करते हैं—कभी कभी विज्ञापन पढ़ लेने में भी क्या हानि है!

५. हेमेन्द्रकुमार भट्टाचार्य, C/o श्री डी. के. भट्टाचार्य, १५६ ई. वेस्ट लेन्ड, खमरिया, जबलपुर (म.प्र.)

आज चार वर्ष से हम चन्दामामा ले रहे हैं और हम काफी बड़े हो गये हैं, परन्तु "चन्दामामा" से दास और वास की आकृतियों में क्यों नहीं परिवर्तन हो रहा है?

आप भूलते हैं कि आपके बाद भी कई छोटे-छोटे ग्राहक व पाठक "चन्दामामा" में आये हैं, उनको दास और वास पसन्द हैं। उनका ख्याल कीजिये, फिर वे ऐसे खराब भी क्या हैं कि उनको बदला जाये! फिर उनकी घटनाओं का वर्षों से कोई सम्बन्ध नहीं है।

६. अमरसिंह सक्सेना, S/o श्री जानकी प्रसाद सक्सेना, एडवोकेट, नौगाव, छतरपुर

क्या "चन्दामामा" का चन्दा हम एक वर्ष से अधिक का भेज सकते हैं?

हाँ।

आप "चन्दामामा" में विज्ञान की बातों इत्यादि का स्तम्भ क्यों नहीं निकालते?

विज्ञान की बातें देते आये हैं और देंगे...आपका सुझाव अच्छा है, इसपर भी विचार करेंगे।

७. विजयकुमार धीर, C/o श्री दुर्गादास धीर, मोहल्ला धीर, नकोदर, जिला जलन्धर

क्या एक ही पाठक कई परिचयोक्तियों को भेज सकता है?

हाँ, मगर, अलग अलग कार्ड पर।

८. अशोककुमार मलिक, C/o ए. सी. डी. मलिक एस/ई/8-A, फरीदाबाद

क्या आपका चन्दामामा मासिक पत्र विदेश में भी भेजा जाता है?

"हाँ"

९. बलवीरसिंह, लोधी रोड़, नई दिल्ली

आप सिक्खों के गुरुओं की कहानियाँ "चन्दामामा" में प्रकाशित क्यों नहीं करते?

करेंगे—हम आवश्यक व प्रामाणिक सामग्री इकट्ठा कर रहे हैं।

चित्र-कथा

एक दिन दास और वास अपने बाग के पास एक गड़रिये लड़के से बात कर रहे थे कि एक शरारती लड़का, एक कुत्ते के साथ आया। उसने कहा—"तुम्हारा टाइगर, मेरा बिस्कुट का पेकेट चुराकर लाया है। मैं अपने कुत्ते फिरंगी से उसे कटवा दूँगा।" कुत्ते के आगे बढ़ते ही टाइगर पेड़ों के पीछे भाग गया। उसके पीछे फिरंगी को देख, दो मेंढे बिगड़ उठे। उन्होंने उसके सिर से टक्कर ली। फिरंगी रोता-चिल्लाता नीचे गिर गया। दास, वास और गड़रिये का लड़का खूब हँसे।

Printed by B. NAGI REDDI at the B. N. K. Press Private Ltd., and Published by B. VENUGOPAL REDDI for Sarada Binding Works, 2 & 3, Arcot Road, Madras-26. Controlling Editor: 'CHAKRAPANI'

रेमी
स्नो और
पाउडर
Remy
Remy

Photo by P. Krishnakumar

पुरस्कृत परिचयोक्ति

"भूख लगी है आने दे!"

प्रेषक : अनिरुद्ध श्रीवास्तव - नेतरहाट

CHANDAMAMA (Hindi) OCTOBER 1960 Regd. No. M. 5452

मार्कोपोलो की साहसिक यात्रायें